अनुक्रम

अणुव्रत

अहिंसक-नैतिक चेतना का अग्रदूत पाक्षिक

वर्ष : 54 ■ अंक 21 ■ 1–15 सितंबर, 2009

जरूरी है दर्शन की सीमा का विस्तार	*आचार्य महाप्रज्ञ*	3
सामाजिक एकीकरण में संस्कृति की भूमिका	*डॉ. दिनेश मणि*	6
भारतीय संस्कृति के अंग, राजस्थान के रंग	*डॉ. तारादत्त 'निर्विरोध'*	8
संस्कार क्या है?	*आर.जे. मौर्य*	9
संयम है संस्कृति का आधार	*सत्यनारायण भटनागर*	12
भारतीय अध्यात्मप्रधान संस्कृति	*सुषमा जैन*	14
संस्कृति : व्यक्ति और समाज	*तुलसी जैन*	16
सह-अस्तित्व पर सांस्कृतिक संकट	*जसविंदर शर्मा*	18
भारतीय संस्कृति में सरस्वती	*डॉ. सरोज कुमार वर्मा*	22
देह-सज्जा या निर्लज्जता?	*स्वामी वाहिद काज़मी*	23
जन्मदिन मनाने से पहले.....	*मुकेश अग्रवाल*	24
स्वस्थ जीवन और मुद्रा संतुलन	*मुनि किशनलाल*	25
बदलते वक्त के साथ	*रजनीकांत शुक्ल*	28

♦ संपादक ♦
डॉ. महेन्द्र कर्णावट

अणुव्रत में प्रकाशित रचनाकारों द्वारा व्यक्त विचारों से संपादक/प्रकाशक की सहमति आवश्यक नहीं है।

■ *सदस्यता शुल्क :*
- **एक प्रति :** बारह रु.
- **वार्षिक :** 300 रु.
- **त्रैवार्षिक :** 700 रु.
- **दस वर्षीय :** 2000 रु.

■ *विज्ञापन सहयोग:*
- **मुख पृष्ठ रंगीन 4 :** 10,000 रु.
- **मुखपृष्ठ रंगीन 2–3 :** 8,000 रु.
- **साधारण पृष्ठ पूरा :** 3,000 रु.
- **साधारण पृष्ठ आधा :** 2,000 रु.

■ *शुल्क भेजने का पता :*

अणुव्रत महासमिति, 210, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, नई दिल्ली-2 (भारत)
- **फोन:** 23233345, 23239963
- **फैक्स:** (011) 23239963
- **E-mail: anuvrat_mahasamiti@yahoo.com**

■ स्तंभ

संपादकीय	2
राष्ट्र चिंतन	5
झाँकी है हिन्दुस्तान की	11
अणुव्रत अधिवेशन सूचना	14
कविता	15
अणुव्रत उद्‌बोधन सप्ताह	32
अणुव्रत आंदोलन	33–40

रोकें सांस्कृतिक प्रदूषण को

भारतवर्ष की विकसित सभ्यता एवं संस्कृति का इतिहास हड़प्पा सभ्यता (सिंधु घाटी सभ्यता) से प्रारंभ होता है जिसका काल 3250-2750 ई.पू. निर्धारित किया गया है। यह सभ्यता वैदिक सभ्यता से भी प्राचीन है। हड़प्पा सभ्यता के विनाश के बाद भारत वर्ष में वैदिक सभ्यता-संस्कृति विकसित हुई। इस संस्कृति के संस्थापकों को ऋग्वेद में ''आर्य'' कहा गया है। ''आर्य'' संस्कृत भाषा का शब्द है जिसका अर्थ सुसंस्कृत है। ''आर्य'' शब्द पहले सांस्कृतिक एवं कालांतर में जातिवाचक बन गया आर्यों के लिए। भारतीय संस्कृति और सभ्यता के एक निश्चित स्वरूप को विकसित करने में आर्यों का महत्वपूर्ण योगदान रहा। उन्होंने प्राचीन परम्परागत संस्कृति-सभ्यता के उपयोगी तत्वों को अपनाकर अपनी संस्कृति के साथ उसका समन्वय करते हुए समुन्नत भारतीय सभ्यता और संस्कृति की परम्परा का विकास किया जो वर्तमान में भी हमारी गौरवमयी संस्कृति है।

सम् उपसर्गपूर्वक कृ धातु में क्तिन् प्रत्यय लगाने पर संस्कृति शब्द बनता है। प्रचलित परिभाषाओं के अनुसार संस्कारयुक्त संवेदनशील कृत्य संस्कृति है, जीवन जीने की शैली संस्कृति है तथा परम्परागत धर्म-दर्शन-कला इन सभी को संस्कृति कहा गया है। संस्कृति की उक्त परिभाषाओं के संदर्भ में हम हमारे वर्तमान को देखते हैं तो लगता है कहीं कुछ छूटता जा रहा है और उसके स्थान पर धीरे-धीरे नई संस्कृति का विकास हो रहा है।

सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य एवं अचौर्य हमारी परम्परागत भारतीय संस्कृति के ब्रह्म सूत्र हैं लेकिन आज ये ब्रह्म सूत्र टूटते नजर आ रहे हैं। व्यक्तिगत स्वतंत्रता एवं खुलेपन के बहाने जो तत्त्व हमारे दैनिक जीवन के अंग बनते जा रहे हैं उनसे भारतीय संस्कृति के समुन्नत विकास के स्थान पर सांस्कृतिक प्रदूषण पनप रहा है। उदाहरण स्वरूप हम हमारी गौरवमयी संयुक्त परिवार प्रथा को ही लें। आज से लगभग चालीस वर्ष पूर्व अर्थात 1960 के दशक तक समूचे देश में संयुक्त परिवार प्रथा का वर्चस्व था। एक ही छत के नीचे परिवार के पचासों सदस्य रहते थे और एक साथ भोजन कर सभी आपस के सुख-दुख में सहभागी बनते थे। कोई सदस्य ज्यादा कमा रहा या कोई कम अर्जन कर रहा है, इसका किसी पर कोई प्रभाव नहीं था। सभी सम्पत्ति संयुक्त थी और सभी पर उसका बराबर व्यय होता था। लेकिन बढ़ती जनसंख्या के दबाव, घटते रोजगार के संसाधनों, व्यक्तिगत स्वार्थ तथा शिक्षा के प्रभावस्वरूप घर से लोग बाहर, दूर जाने लगे और धीरे-धीरे इन पचास वर्षों में संयुक्त परिवार प्रथा टूटने के कगार पर पहुंच गई। पिछले दो दशक में छोटे एवं बड़े पर्दे ने जिस तरह के पारिवारिक धारावाहिकों को प्रदर्शित किया उसने भी एकल परिवार प्रथा को बढ़ावा दिया, जिसके फलस्वरूप परिवारों में अवसाद, तनाव और मानसिक विकृति ने पाँव जमा लिये तथा बालपीढ़ी के भविष्य को आयाओं के हाथों में सौंप उन्हें अवसाद का शिकार बना दिया।

आज फिल्मों, टेलीविजन, नाटकों, नुक्कड़ नाटकों, गीतों में घरेलू हिंसा, खुलापन, चोरी, तलाक, भ्रष्टाचार, नशा, तस्करी, अश्लीलता इत्यादि अनैतिक दृश्यों, द्विअर्थी संवादों की भरमार है जिनके चलते भारतीय संस्कृति के मूलतत्व सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य और अचौर्य हाशिए पर आ गये हैं और झूठ, हिंसा, परिग्रह, भोग, कामुकता का वर्चस्व बन चला है। सांस्कृतिक मूल्यों के विघटन के इस दौर में हमें उठना होगा और उन साहित्य, धारावाहिकों, फिल्मों, नाटकों, गीतों का सामूहिक बहिष्कार करना होगा जो पाठकों-दर्शकों की पसंद का सहारा लें सांस्कृतिक प्रदूषण को फैलाने में अग्रगामी बन रहे हैं। हमें यह समझना होगा कि संस्कृति के विकास और पतन का दायित्व भूभाग पर रहने वाले नागरिकों पर होता है न कि शासन पर क्योंकि शासक तो जनता को आमोद-प्रमोद में डुबो कर अपनी कुर्सी के चारों पायों को मजबूती देना चाहता है। अणुव्रत पाक्षिक का यह अंक संस्कृति के इन्हीं पक्षों को उद्घाटित कर रहा है। संस्कृति की आचार-संहिता का पालन तो हमें ही करना होगा।

◆ **डॉ. महेन्द्र कर्णावट**

गरीबी, शोषण, अपराध, बीमारी, हत्या, आत्महत्या, भ्रूणहत्या, आतंकवादी मनोवृत्ति क्या ये दर्शन के चिंतन-बिन्दु नहीं हैं? हम विज्ञान की उस गति का समर्थन नहीं कर सकते, जिसके द्वारा खोजे हुए नियम विश्व के सामने एक संकट पैदा किये हुए हैं। हम दर्शन के द्वारा खोजे गए उन नियमों को विस्तार देने का प्रयत्न करें, जो विश्व को मैत्री के सूत्र में बांध सकें।

जरूरी है दर्शन की सीमा का विस्तार

● आचार्य महाप्रज्ञ ●

अचेतन कभी चेतन नहीं होता और चेतन कभी अचेतन नहीं होता। जैन दर्शन इस सार्वभौम नियम के द्वारा विश्व को देखने और उसकी व्याख्या करने का एक दृष्टिकोण है।

सत् की अनेक व्याख्याएं हैं। उमास्वाति ने सत्य की त्रयात्मक व्याख्या की है। उनके अनुसार उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य की समन्विति सत् हैं चेतन भी सत् है और अचेतन भी सत् है। जीव अतीत में था, वर्तमान में है और भविष्य में रहेगा, इसका हेतु ध्रौव्य का नियम है। अपरिवर्तनीय स्वरूप की व्याख्या उसी के आधार पर की जा सकती है। उत्पाद और व्यय-यह परिवर्तन का नियम है। इसके आधार पर द्रव्य के परिवर्तनीय स्वरूप की व्याख्या की जा सकती है।

चेतन अथवा जीव, अचेतन अथवा अजीव से भिन्न है। यह अध्यात्म का मौलिक आधार है। जीव द्रव्य भी परिवर्तन के नियम से मुक्त नहीं है, इसलिए उसके नानारूप बन जाते हैं। उनमें कुछ रूप अध्यात्म के साधक हैं और कुछ बाधक। राग-द्वेष आदि बाधक तत्त्वों से मुक्ति पाने के लिए वीतरागता की साधना की जा सकती है। यह वीतरागता अध्यात्म का मौलिक स्वरूप है।

समाज की प्रवृत्ति रागात्मक है। मनुष्य के विकास का माध्यम है इन्द्रिय समूह। वह ज्ञानात्मक है, साथ-साथ पदार्थ जगत के आकर्षण का माध्यम भी है। इसलिए समाज अथवा व्यक्ति की व्याख्या एकान्त दृष्टिकोण से नहीं की जा सकती।

भारतीय मनीषियों ने पदार्थवादी दृष्टिकोण को ससीम रखने के लिए आध्यात्मिक चेतना का विकास किया। जैन दर्शन में तत्त्वविद्या और अध्यात्म-दोनों परस्पर संश्लिष्ट हैं। तत्त्वविद्या से विश्व स्थिति का यथार्थ बोध होता है। उस बोध की निष्पत्ति भौतिक विकास और आध्यात्मिक विकास-दोनों दिशाओं में हो सकती है। अनेकान्त दृष्टि के अनुसार भौतिक विकास को सर्वथा नकारा नहीं गया। उसे जीवनयात्रा के पूरक तत्त्व के रूप में स्वीकृति दी गई। फलस्वरूप आध्यात्मिक विकास जीवन का लक्ष्य बन गया। सभी आत्मवादी दर्शनों ने अध्यात्म को प्रतिष्ठित किया, वह भारतीय चिंतन की एक अमूल्य धरोहर बन गया।

दर्शन को केवल तत्त्वविद्या तक सीमित करना उचित नहीं है। विज्ञान, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, आदि दर्शन के वटवृक्ष की मात्र शाखाएं हैं। उनकी अपनी कोई जड़ नहीं है। दार्शनिक दृष्टि समाजविज्ञान और अर्थशास्त्र के लिए जितनी जरूरी है, उतनी ही विज्ञान के लिए जरूरी है। दर्शन और विज्ञान को सर्वथा पृथक करना दर्शन और विज्ञान दोनों के विकास में एक अवरोध है।

जैन दर्शन ने सृष्टि और सृष्टि-संचालन के लिए किसी ईश्वरीय सत्ता को स्वीकार नहीं किया है। इसलिए उसने सार्वभौम और सामयिक नियमों की खोज की है। उसी के आधार पर विश्व-व्यवस्था की व्याख्या की है।

चेतन और अचेतन में सर्वथा भिन्नता का सिद्धांत अनेकान्त के अनुसार समीचीन नहीं है। भौतिक विज्ञान ने विश्व व्यवस्था के अनेक नियमों की खोज की है और प्राचीनकाल में दर्शनों ने भी की। नियमों की खोज सत्य की खोज है इसलिए हम दर्शन और विज्ञान के बीच कोई लक्ष्मण रेखा नहीं खींच सकते। दार्शनिक जगत ने चेतन और विज्ञान अचेतन-दोनों के नियमों की खोज की। विज्ञान जगत की खोज का अब तक मुख्य विषय है अचेतन द्रव्य (पुद्गल द्रव्य) के नियमों की खोज।

योग और अध्यात्म दर्शन की सीमा से परे नहीं है। ये दोनों भारतीय दर्शन के मौलिक आधार रहे हैं। नियमों की खोज के लिए स्थूल से सूक्ष्म की ओर जाना नितान्त आवश्यक है। योगी और अध्यात्म-साधक ध्यान और समाधि के द्वारा अतीन्द्रिय चेतना का विकास कर लेते थे। उस अतीन्द्रिय चेतना के आधार पर सूक्ष्म सत्यों की खोज की जाती थी। वैज्ञानिक सूक्ष्म नियमों की खोज सूक्ष्म यंत्रों के माध्यम से करते हैं।

आखिर प्रस्थान दोनों का सूक्ष्म की ओर है। दार्शनिक जगत् के पास परीक्षण के लिए कोई प्रयोगशाला नहीं है। वैज्ञानिक को उसकी सुविधा प्राप्त है। किन्तु इस प्रसंग में हमें स्वीकार करना चाहिए योग और अध्यात्म के साधकों ने इन्द्रियपटुता और अतीन्द्रिय चेतना का इतना विकास किया था कि उन्हें यांत्रिक प्रयोगशाला की अपेक्षा ही नहीं रही।

ज्ञान का सार है आचरण। निर्युक्तिकार का यह अभिमत दर्शन और आचार की एकता का सेतु है। 'मूल्यपरक विज्ञान' इसमें संगति खोजना बहुत कठिन है। दर्शन के आधार पर आचार-संहिता का निर्माण हुआ है, किन्तु विज्ञान के आधार पर कोई संहिता नहीं बनी। वैज्ञानिक नियमों की खोज तक सीमित हो गए हैं। उसका सार अचार है, यह सचाई उन्हें अभी मान्य नहीं है। यदि यह सचाई मान्य होती तो संहारक अस्त्रों का निर्माण कभी नहीं होता, प्रकृति का असीम दोहन भी नहीं होता, गरीबी को बढ़ाने वाली सुविधावादी सामग्री का केवल व्यावसायिक हित के लिए निर्माण भी नहीं किया जाता।

योग अथवा अध्यात्म का प्रमुख आधार है अहिंसा। वह आधार भी है और आचरण भी। पर्यावरण की समस्या इसलिए है कि समाज अहिंसा की व्यापकता का अनुभव नहीं कर रहा है। किसी प्राणी को मत मारो, यह अहिंसा की सीमा नहीं है। शस्त्र का निर्माण मत करो, यह भी उसकी सीमा नहीं हैं। अहिंसा का व्यापक स्वरूप है संयम की चेतना का निर्माण। हम पर्यावरण को विशुद्ध करने और निःशस्त्रीकरण का प्रयत्न करते हैं, किन्तु चेतना के रूपान्तरण का प्रयत्न नहीं करते। क्या चेतन का रूपान्तरण किये बिना प्रकृति का अति दोहन, पर्यावरण का प्रदूषण और शस्त्रों का निर्माण रोका जा सकता है?

उपभोग की चेतना का रूपान्तरण किये बिना प्रकृति के अतिदोहन को रोका नहीं जा सकता।

सुविधावादी और विकास के असंतुलित दृष्टिकोण को बदले बिना, जीवन-निर्वाह के लिए अपोषक उपभोग सामग्री के उत्पादन की सीमा करने वाली चेतना का विकास किये बिना पर्यावरण के प्रदूषण पर रोक लगाना संभव नहीं है।

जैन दर्शन के अनुसार भावधारा शस्त्र-निर्माण का मूल आधार है। भाव का केन्द्र है मस्तिष्क। शस्त्र पहले मस्तिष्क में पैदा होता है, फिर वह कारखाने में। निःशस्त्रीकरण के लिए सबसे पहले जरूरी है भावतंत्र का परिष्कार और मस्तिष्कीय प्रशिक्षण। इसके बिना निःशस्त्रीकरण की चर्चा बहुत सार्थक नहीं होगी।

वैज्ञानिक चिंतन और आविष्कार के बाद विकास की अवधारणा इतनी जटिल हो गई है कि पीछे लौटना भी संभव नहीं और पीछे लौटे बिना सभ्यता पर छाये हुए संकट के बादलों का बिखरना भी संभव नहीं है। तकनीकी विकास पर भी विवेकपूर्वक अंकुश लगाना जरूरी है। क्या वह तकनीकी विकास उपादेय है जो मानव की अस्मिता पर प्रश्नचिन्ह लगा रहा है? हमें मुड़कर देखना होगा कि सीमातीत तकनीकी विकास के बाद मनुष्य ने क्या खोया और क्या पाया? मानसिक शांति, तनावमुक्त, मनःस्थिति, स्वास्थ्य पर उसका क्या प्रभाव पड़ रहा है? इसे उपेक्षित कर तकनीकी विकास को एकाधिकार प्रभुत्व नहीं दिया जा सकता।

विश्व शांति, एक मानव परिवार, निःशस्त्रीकरण-इन शब्दों का बार-बार पुनरुच्चारण होता रहता है। यदि शब्दोच्चार मात्र से विश्व शांति स्थापित होती तो कभी की हो जाती। इन शब्दों की पुनरावृत्ति कोई बुरी बात नहीं है, बहुत अच्छी है, किन्तु इसके साथ विश्वशांति के बाधक तत्त्वों पर गंभीर चिंतन जरूरी है। उसके बाधक तत्त्वों की एक संक्षिप्त तालिका यह हो सकती है

साम्राज्यवादी मनोवृत्ति
बाजार पर प्रभुत्व
जाति का अहंकार
साम्प्रदायिक कट्टरता
उपभोग सामग्री की विषमतापूर्ण अवस्था और व्यवस्था

इससे भी अधिक मूल कारण है व्यक्ति का अपने संवेगों पर नियंत्रण न होना। संवेग संतुलन के व्यापक प्रचार और प्रयोग पर गहन विचार किये बिना वैज्ञानिक युग में उपजी हुई समस्याओं का समाधान नहीं किया जा सकता।

परिष्कार के लिए शिक्षा की प्रणाली पर पुनर्विचार की आवश्यकता है। केवल हिन्दुस्तान में ही नहीं, पूरे विश्व में। इस विषय में प्राकृत साहित्य का एक सुन्दर निर्देश है शिक्षा दो उद्देश्यों की पूर्ति के लिए होनी चाहिए एक सुन्दर निर्देश है। शिक्षा दो उद्देश्यों की पूर्ति के लिए होनी चाहिए

1. आजीविका की समस्या को सुलझाने के लिए।
2. सद्गति के लिए।

सद्गति का अर्थ है जीवन मूल्यों अथवा चारित्रिक मूल्यों का विकास

इसके अभाव में समाज में सद्गति की अनुभूति नहीं होती, स्वस्थ समाज की रचना नहीं होती।

जैन चिंतन में शिक्षा के दो प्रकार बतलाए गए हैं

1. ग्रहण शिक्षा
2. आसेवन शिक्षा

गुरु अथवा शिक्षक की वाणी अथवा पुस्तक से प्राप्त होने वाला ज्ञान ग्रहण शिक्षा है। आसेवन शिक्षा प्रायोगिक शिक्षा है। विज्ञान के अनेक क्षेत्रों में प्रायोगिक शिक्षा चालू है। किन्तु मानवीय चेतना को बदलने वाली प्रायोगिक शिक्षा विज्ञान के क्षेत्र में चालू नहीं है।

चारित्रक मूल्यों के विकास के लिए जरूरी है मूल्य-चेतना को नियंत्रित करने वाली प्रायोगिक शिक्षा। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अणुव्रत-प्रवर्त्तक आचार्य तुलसी के नेतृत्व में जीवन विज्ञान की प्रणाली विकसित की गई। चेतना का रूपान्तरण करने के लिए आसन, प्राणायाम, ध्यान, भावना और अनुप्रेक्षा इनका प्रायोगिक अभ्यास नितान्त अपेक्षित है। यह विज्ञान के छात्र के लिए भी उतना ही आवश्यक है, जितना कला-संकाय के छात्र के लिए।

पदार्थभिमुखता भौतिकवाद का एक प्रमुख लक्षण है। वर्तमान युग में उसका स्थान तकनीकी अभिमुखता ने ले लिया है। यदि उसकी सीमाएं निर्धारित न की जाएं तो सांस्कृतिक मूल्यों को बचाना संभव नहीं। उन मूल्यों की सुरक्षा के लिए दर्शन की सीमाओं का विस्तार करना होगा। आज का दार्शनिक चिंतन युग की समस्याओं को सुलझाने का कोई नया चिंतन प्रस्तुत नहीं कर रहा है, इसलिए विज्ञान का एकाधिकार प्रभुत्व स्थापित हो रहा है।

प्रत्येक द्रव्य के अनंत पर्याय हैं। हम उनमें से कुछ पर्यायों को जानते हैं। इसलिए द्रव्य ज्ञेय कम और अज्ञेय अधिक है। अज्ञात पर्यायों को ज्ञान बनाने के लिए निरंतर खोज की जरूरत है। दर्शन में एक प्रकार का ठहराव आ गया है। वह अपने पूर्वज दार्शनिकों द्वारा खोजे गए सत्यांशों (नए दृष्टि) को परिपूर्ण सत्य मानकर संतोष की सांस ले रहा है। जीव विज्ञान, कर्मवाद, भाग्यवाद, पुरुषार्थवाद आदि की मान्यताओं पर विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में विचार करना बहुत आवश्यक है। विज्ञान जगत में जो सूक्ष्म नियमों की खोज हुई है, उनका दार्शनिक दृष्टि से अंकन करना बहुत जरूरी है।

गरीबी, शोषण, अपराध, बीमारी, हत्या, आत्महत्या, भ्रूणहत्या, आतंकवादी मनोवृत्ति-क्या ये दर्शन के चिंतन-बिन्दु नहीं हैं? हम विज्ञान की उस गति का समर्थन नहीं कर सकते, जिसके द्वारा खोजे हुए नियम विश्व के सामने एक संकट पैदा किये हुए हैं। हम दर्शन के द्वारा खोजे गए उन नियमों को विस्तार देने का प्रयत्न करें, जो विश्व को मैत्री के सूत्र में बांध सकें। महावीर वाणी का एक महत्त्वपूर्ण सूक्त इस दिशा में इंगित कर रहा है

अप्पणा सच्चमेसेज्जा मेत्तिं भूएसु कप्पए।
स्वयं सत्य खोजें, सबके साथ मैत्री करें।

विज्ञान की सीमा वस्तु (ऑब्जेक्ट) है। दर्शन चेतना (सब्जेक्ट) प्रधान है। विज्ञान को चेतना में घटित घटना मान्य नहीं है और दर्शन का पदार्थ में घटित होने वाली घटनाओं से संबंध नहीं है। इसलिए इन दोनों की पारस्परिक पूरकता का विकास होना चाहिए। इससे वैश्विक समस्याओं के समाधान में बहुत बड़ा योग मिल सकता है।

राष्ट्र चिन्तन

◆ देश के अधिकांश हिस्सों में कम बारिश के कारण सूखे और एच-1एन-1 वायरस से फैले फ्लू से निपटने के लिए सरकार हर जरूरी प्रयास कर रही हैं लेकिन इन प्रयासों और विकास प्रक्रिया में सहयोग के लिए हर नागरिक को सामने आना चाहिए। संसद में पारित बच्चों के मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा के अधिकार का विधेयक ऐतिहासिक कदम है।

राष्ट्रीय महिला सशक्तीकरण मिशन से महिलाएं सामाजिक और आर्थिक तौर पर मजबूत होकर राष्ट्र निर्माण में सक्रिय भूमिका निभाएंगी। समाज के कमजोर और गरीब लोगों को समृद्धि और विकास की प्रक्रिया में शामिल किया जाना चाहिए। शिक्षा, स्वास्थ्य और कौशल निर्माण के साधन सुलभ कराए जाने से वे सक्षम बनेंगे और अपने भविष्य का निर्माण खुद कर सकेंगे।

देश को विकास की उच्च गति को बनाए रखने के लिए प्रयास करना होगा। इसके लिए बुनियादी सुविधाओं के निर्माण और ग्रामीण विकास पर ध्यान देने की जरूरत है। आधुनिक भारत के निर्माण के लिए अकादमिक संस्थाओं को मजबूत करने की जरूरत है।

आतंकवाद और भ्रष्टाचार के खिलाफ कारगर लड़ाई जरूरी है। आतंकवाद शांतिपूर्ण सहअस्तित्व की भारतीय संस्कृति के खिलाफ है। समाज और विश्व में अमन के लिए इसे मिटा देना चाहिए।

विकास का लाभ हर देशवासी तक पहुंचाने के लिए शासन व्यवस्था को प्रभावी, सरल और पारदर्शी बनाया जाना चाहिए। लोकतंत्र, समावेशी आर्थिक विकास, सामाजिक सशक्तीकरण और सभ्यतागत धरोहर पर आधारित मूल्य को देश को सुदृढ़ आधार देने के लिए चार जरूरी स्तंभ हैं।

जनप्रतिनिधि उन लोगों की आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व करें जिन्होंने उन्हें चुना है। चुनावों के बाद भी मतदाताओं की बात सुनी जानी चाहिए क्योंकि यह जनप्रतिनिधियों का दायित्व भी है कि वे लोगों के कल्याण और राष्ट्र की प्रगति के लिए काम करें। देश की संप्रभुता और एकता की हिफाजत में सशस्त्र सेनाओं, अर्द्धसैनिक बलों और केन्द्र तथा राज्यों की पुलिस की भूमिका सराहनीय है। देशवासियों को उन महान नेताओं, शहीदों और स्वतंत्रता सेनानियों के प्रति श्रद्धा और सम्मान व्यक्त करना चाहिए जिनकी बदौलत भारत आज एक संप्रभु राष्ट्र है।

प्रतिभा पाटिल, राष्ट्रपति

सामाजिक एकीकरण में संस्कृति की भूमिका

• डॉ. दिनेश मणि •

संस्कृति समाज की अर्थव्यवस्था, सामाजिक संगठन, राज्यतंत्र, धर्म और अंधविश्वास, साहित्य और कला आदि विभिन्न पक्षों का कुल योग ही नहीं होती। इन विभिन्न पक्षों को एक-दूसरे के साथ वह जिस प्रकार से गूंथती और एकत्र करती है उससे ही समाज की विशिष्ट छवि उभरकर आती है।

समाज की धर्मनिष्ठा की अवस्था से लेकर आधुनिक अवस्था में रूपांतरित होने का कार्य सदियों से होता रहा है। भिन्न-भिन्न स्तरों पर सामाजिक एकीकरण के लिए आवश्यक वातावरण बनाए रखने हेतु वैचारिक प्रवृत्तियों की भी भूमिका महत्त्वपूर्ण हो रही है। यहां यह स्पष्ट करना आवश्यक होगा कि चाहे हमारी संस्कृति धर्मनिष्ठा से संबंधित हो अथवा समाजनिष्ठा से, सामाजिक ज्ञान से संबंधित हमारी संस्कृति बोधगम्य है और उसी से हमारे लक्ष्यों की सिद्धि हो सकती है।

अपनी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मनुष्य प्रकृति के साधनों का जिस ढंग से प्रयोग करता है, उससे उसकी सभ्यता का निर्माण होता है। पर चिंतन द्वारा अपने जीवन को सरस, सुंदर और करुणामय बनाने के लिए मनुष्य जो यत्न करता है उसका परिणाम संस्कृति के रूप में होता है। मनुष्य ने धर्म का जो विकास किया, दर्शन शास्त्र के रूप में जो चिंतन किया, साहित्य, संगीत और कला का जो सृजन किया, सामूहिक जीवन को हितकर और सुखी बनाने के लिए जिन प्रथाओं व संस्थाओं को विकसित किया उन सबका समावेश हम संस्कृति में करते हैं।

पशु जगत के अन्य प्राणियों से मानव की भिन्नता की सूचक है उसकी संस्कृति। प्रकृति ने मानव को ही कुछ ऐसे जैविकीय वरदान दिये हैं जिससे वह स्वयं कुछ नया रच सके, अपने व्यवहार को बदल सके और अपने अनुभवों और विचारों को भाषा के माध्यम से समाज के अन्य लोगों तक पहुंचा सके। मानव की इसी क्षमता के कारण प्रत्येक मानव समाज की अपनी विशिष्ट छवि है, उसके सदस्यों की अपनी अलग जीवन शैली है जो उनका जीवन निर्देशित करती है, पर जो स्वयं उसके पालनकर्ता द्वारा जाने-अनजाने बदलती रहती है। बोलचाल की भाषा में संस्कृति शब्द का उपयोग इस व्यापक अर्थ में नहीं किया जाता। संकीर्ण अर्थ में इसे केवल संभ्रान्त वर्ग की जीवन शैली का पर्याय गिना जाता है। शास्त्रीय संगीत और नृत्य, साहित्य और कला, उच्च दार्शनिक सिद्धांत और मीमांसा को ही संस्कृति का सूचक मान लिया जाता है। परिभाषा की इस संकीर्ण कसौटी पर खरी न उतरने वाली समाज की अनेकानेक बातों को असभ्य, अभद्र, असंस्कृत, देशज, ग्रामीण, पिछड़ी हुई इत्यादि की संज्ञा दे दी जाती है। अठारहवीं-उन्नीसवीं शताब्दी में पाश्चात्य देशों के उपनिवेशवादी दौर में इसी कसौटी पर गैर पाश्चात्य समाजों को संस्कृतिविहीन और ''प्रिमिटिव'' की श्रेणी में रख दिया गया ताकि सूचना में पाश्चात्य देश अपने को ऊंचा रख सकें।

दैनिक व्यवहार में सामान्यतः हम ''सुसंस्कृत'' ऐसे व्यक्तियों को कहते हैं जिनमें व्यवहार कुशलता होती है, जो सामाजिक शिष्टाचार के नियमों का साधारणतः उल्लंघन नहीं करते तथा जो अपने आचरण में समाज की परंपरागत नीति व्यवस्था का पालन करते हैं। अनेक समाज वैज्ञानिकों के मतानुसार ''संस्कृति'' हमें मानवीय उद्देश्यों की समष्टि कहना चाहिए और ''सभ्यता'' मानवीय साधनों की समष्टि को। इसी तरह कुछ अन्य समाज वैज्ञानिकों का मत है कि ''संस्कृति'' मानव के आंतरिक गुणों की द्योतक है और सभ्यता से मानव के बाह्य निर्माण कार्य का बोध होता है।

उपयोगी और ललित कलाओं के क्षेत्र में जितने भी आविष्कार मनुष्य ने आज तक किए हैं या जो भी मापदण्ड स्थापित किए हैं, वे सब सृजन की प्रतिभा का परिणाम है। मनुष्य में यह प्रतिभा न होती तो वह पशुता की स्थिति से ऊपर न उठ पाता और न सभ्य कहला पाता। मनुष्य को सभ्य बनाने में संस्कृति कारण बनती है। सभ्यता संस्कृति का परिणाम है लेकिन यह आवश्यक नहीं कि एक सभ्य व्यक्ति सुसंस्कृत भी हो।

संस्कृति की समाज वैज्ञानिक परिभाषा समाजव्यापी होती है। संस्कृति समाज के हर पक्ष को छूती है। समाज में होने वाली विभिन्न अंतःक्रियाओं के अंचल एक-दूसरे से आबद्ध होते हैं। संस्कृति ही उन्हें जोड़ती है और समाज और राष्ट्र को एकता प्रदान करती है।

संस्कृति समाज की अर्थव्यवस्था, सामाजिक संगठन, राज्यतंत्र, धर्म और अंधविश्वास, साहित्य और कला आदि विभिन्न पक्षों का कुल योग ही नहीं होती। इन विभिन्न पक्षों को एक-दूसरे के साथ वह जिस प्रकार से गूंथती और एकत्र करती है उससे ही समाज की विशिष्ट छवि उभरकर आती है। यही कारण है कि समाज के किसी एक पक्ष में होने वाले परिवर्तन समाज के अन्य पक्षों को प्रभावित करते हैं। यदि समाज की जनसंख्या में वृद्धि होती है तो उसका प्रभाव अर्थव्यवस्था पर भी पड़ता है और शिक्षा व्यवस्था पर भी। यदि अप्रवासियों

की संख्या बढ़ती है तो उसका प्रभाव न केवल शहरी विकास पर पड़ता है वरन् उस समुदाय की भाषा, रहन-सहन, भोजन की पसंद आदि पर भी पड़ता है। यह अप्रवास का ही प्रतिफल है कि आज हमारे देश में कई धर्मों के मानने वाले लोग हैं। एक राष्ट्रभाषा होते हुए भी कई भाषाओं के बोलने वाले लोग हैं, भोजन के व्यंजनों में इतनी विविधता पाई जाती है और कई प्रादेशिक और अंतर्राष्ट्रीय पसंदीदा व्यंजन अखिल भारतीय होते जा रहे हैं।

प्रारंभ में मनुष्य संस्कृति का निर्माण करता है और फिर संस्कृति मनुष्य के व्यक्तित्व के अनेक पक्षों को निर्मित करने लगती है। संस्कृति का प्रभाव मनुष्य की शरीर रचना तथा मनोभावों के गठन पर भी पड़ता है। व्यक्ति और संस्कृति दोनों एक-दूसरे को क्रमशः प्रभावित करते हैं। संस्कृति व्यक्ति को एक विशेष सांचे में ढालती है। सामूहिक प्रयत्नों द्वारा व्यक्ति अपनी बुद्धि एवं आविष्कार शक्ति तथा अभिरुचि एवं अनुभव का उपयोग कर संस्कृति के रूप को बदलने का प्रयत्न करते हैं। प्रायः प्रत्येक संस्कृति में अपनी परंपरा को बनाए रखने की शक्ति होती है। संस्कृतिकरण की यह क्रिया प्रत्यक्ष भी होती है और अप्रत्यक्ष भी। जीवन के प्रथम वर्षों में संस्कृतिकरण द्वारा शिशु अपनी मूल प्रवृत्तियों की तृप्ति और अभिव्यक्ति के समाज स्वीकृत माध्यमों से परिचित होता है। उसके व्यक्तित्व के विकास तथा शेष जीवन के क्रम पर इनका अत्यंत व्यापक प्रभाव पड़ता है।

संस्कृति के मूल्यों के अनुसार व्यक्ति उचित तथा अनुचित, अनुकरणीय तथा उपेक्षणीय, प्रशंसा योग्य तथा हेय कार्यों और व्यवहारों का भेद परिपक्व होने तक भलीभांति समझने लगता है। मानसिक तथा शारीरिक दृष्टि से परिपक्व होने तक वह संस्कृतिकरण के माध्यम से सांस्कृतिक स्थिरता के लिए आवश्यक सभी तथ्य पा लेता है, किन्तु इस क्रिया का अंत मानव के अंत के बाद ही होता है। मानसिक संतुलन पाने पर व्यक्ति नवनिर्मित परिस्थितियों में समाज स्वीकृत मूल्यों की उपादेयता पर विचार करने योग्य हो जाता है। इस स्थिति में उसके व्यवहार-प्रकार, संस्कृति स्वीकृत व्यवहार-प्रकार होते हैं, किन्तु परिवर्तित परिस्थितियों में उभरने वाले नवीन व्यवहार प्रकारों को स्वीकार अथवा अस्वीकार करने का महत्त्वपूर्ण निर्णय भी उसे ही करना होता है। उसकी स्वीकृति अथवा अस्वीकृति दोनों का संस्कृति की प्रगति तथा परिवर्तन पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। इस तरह संस्कृति द्वारा निर्मित होकर भी मानव अपनी संस्कृति के नए सीमाओं तथा आदर्शों एवं मूल्यों का विकास करता रहता है।

संस्कृति को जब हम उसके व्यापक अर्थ में एक संबोध के रूप में प्रयोग करते हैं तो हमारा परिप्रेक्ष्य समाज वैज्ञानिक हो जाता है। इस दृष्टि से संस्कृति को धर्म का पर्याय नहीं गिना जा सकता। अन्य पक्षों की भांति धर्म भी संस्कृति का एक अंग मान्य है। बहुधर्मी समाजों की संस्कृति समन्वित संस्कृति होती है। **जब हम संस्कृति-बहुल समाज की बात करते हैं तब हमारा अभिप्राय होता है ऐसी संस्कृति से जो अनेक उपसंस्कृतियों से आयातित तत्वों के समागम की सम्मिलित प्रक्रिया से ही संस्कृतियां विषम स्वरूप धारण कर लेती हैं। वैश्वीकरण के आज के दौर में यह प्रक्रिया संसार की सभी संस्कृतियों को प्रभावित कर रही है।**

परिवर्तनों के पर्यावरण में पहचान बनाये रखने की क्षमता ही संस्कृति को समुत्थान शक्ति प्रदान करती है, उसे लचीला बनाती है। जो संस्कृतियां परिवर्तन का स्वागत नहीं करती वे टूट जाती हैं। उनमें प्रगति का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है। प्रगति और परिवर्तन के स्रोत आभ्यांतरिक भी होते हैं और बाह्य भी, समाज के सदस्य भी परिवर्तन में योग देते हैं और बाहरी समाजों से भी परिवर्तन की प्रेरणाएं मिलती हैं। समाजों के आपसी सम्पर्क बढ़ने से उनमें बहुलता आने लगती है। बाहर से आकर बसे लोग धीरे-धीरे अपने नये परिवेश के अनुकूल ढल जाते हैं और अपने अपनाए देश की संस्कृति के कई तत्वों को ग्रहण कर लेते हैं।

संस्कृति कभी भौतिक जगत को परिचालित करने वाले मूल्यों से उदासीन नहीं रह सकती यद्यपि उसका प्रमुख आग्रह उन सत्यों के प्रति बना रहता है जो मानव के भीतरी जगत से संबंध रखते हैं, जैसे भावना, आकांक्षा, सुख-दुख और सामाजिक परिवेश आदि। सुप्रसिद्ध भौतिक विज्ञानी अल्बर्ट आइंस्टाइन ने संस्कृति के विषय में कहा है "वह व्यक्ति की संस्कृति ही है जो उसकी आत्मा को मांज कर दूसरों के उपकार के एवज उसे नम्र और विनत बनाती है। संस्कृति ही आत्मा के बाह्य सौंदर्य को विकसित करती है। संस्कृति की कमी ही व्यक्ति को कुरूप और विकृत बना देती है। जितना व्यक्ति मन, कर्म, वचन से दूसरों के प्रति उपकार की भावनाओं और विचारों को प्रधानता देगा, उसी अनुपात से समाज में उसका सांस्कृतिक महत्त्व बढ़ेगा।

इस प्रकार संस्कृति से सामाजिक जीवन के संतुलन का संरक्षण होता है और उस संरक्षण को बनाए रखना उसका निरंतर कर्त्तव्य हो गया है। इसके लिए धर्मयुक्त सांस्कृतिक जीवन से उसके धर्म निरपेक्ष पहलू को अलग करने के लिए संस्कृति शब्द का सही अर्थ निकालना होगा और उस अर्थ का विवेचन सामाजिक व्यवहार के संदर्भ में करने का भी प्रयत्न करना होगा। आधुनिक समाज के साथ आज संस्कृति शब्द बहुत जुड़ा हुआ है। औद्योगिक क्रांति के साथ हमारी विचारधारा में जो परिवर्तन हुआ और उसका समाज के अलग-अलग वर्गों पर जो असर पड़ रहा है, इसका भी विवेचन करने की आवश्यकता होगी।

पूर्व संपादक : 'विज्ञान' मासिक
47/29, जवाहर लाल नेहरू रोड,
जॉर्ज टाउन, इलाहाबाद–2 (उ.प्र.)

भारतीय संस्कृति के अंग, राजस्थान के रंग

• डॉ. तारादत्त 'निर्विरोध' •

साहित्य-कला-इतिहास पर्यटन और संस्कृति के संदर्भ में राजस्थान विभिन्न रंगों का समन्वित क्षेत्र हैं। यहां रंगों के अपने देश-प्रदेश, नगर, कस्बे ओर गांव हैं, उनकी पृथक-पृथक पगडंडिया हैं अंतर्यात्राएं भी। ये रंग कभी जलवायु में खिलकर, कभी गंध में तैरकर और कभी इन्द्रधनुषी रंगों की झांइयां फैलाकर अपनी सजगता का परिचय देते हैं।

यद्यपि प्रकृति ने राजस्थान को प्राकृति रंग देने में कोताही बरती हैं और प्रदेश में कही हरीतिमा की चादर बिछाई हैं तो कहीं पीली-पपड़ाई सूखी जमीन देकर।

भूख-प्यास को नये अर्थ दे दिए हैं किन्तु मरुस्थल के सपने साकार करने के लिए मरुगंगा, 'इंदिरा गांधी नहर' का पानी काफी हैं और अब तो प्रदेश को यमुना का पानी भी मिल रहा है। मरुस्थल को नंदन-कानन में बदलने के प्रयास भी जारी हैं। कहा जा सकता है कि राजस्थान में अभी नये रंग और गहराएंगे।

भारतीय संस्कृति के अंग हैं राजस्थान के रंग। आकर्षक दुर्गों, शहरों, महलों और कलागत विशेषताओं के राजस्थान में विदेशी एवं देशी पर्यटकों की परिष्कृत अभिरुचियों के अनुकूल ऐसे दर्शनीय तथा ऐतिहासिक स्थल भी यहां हैं जो समय संदर्भ से कटे नहीं हैं और भारतीय पुरातन संस्कृति के बहुरंगी रंग अपने में समेटे हुए हैं। यहां के शहर अपनी बसावट, अजेय दुर्गों एवं कलात्मक द्वारों के लिए विश्व विश्रुत और अपना वैशिष्टय रखते हैं।

राजस्थान के शहरों में मरु प्रांत की विभूति और नगरों के बादशाह जयपुर की पिंक-सिटी' या 'गुलाबी नगरी' जैसे विशेषणों के साथ विश्व में पहचान बनी हुई है। जयपुर शहर एक बेमिसाल एवं बसावट में लासानी शहर के साथ भारत का पेरिस भी है। पहाड़ियों से घिरे आयताकार रूप में बसे किले, बड़े दरवाजों, चौपड़ों और गुलाबी रंग की खूबियों के इस शहर में ज्योतिष, स्थापत्य, शिल्प एवं हस्तकलाओं की गंध परिव्याप्त है। अजमेर, बीकानेर, अलवर, भरतपुर, बूंदी, झुन्झुनूं, चुरू, सीकर, आबू पर्वत और रणकपुर भी अपनी विशेषताओं के लिए कम प्रसिद्ध नहीं हैं। झीलों की नगरी उदयपुर अपूर्व प्राकृतिक सौंदर्य के अंक में बसा एक विलक्षण ऐसा शहर है जहां की झीलों एवं उनमें बिम्बायित महलों के जादुई रंग हर पर्यटक पर चढ़ते हैं। चित्तौड़गढ़ का अपना ऐतिहासिक महत्त्व है। प्रसिद्ध ऐतिहासिक दुर्ग पर स्थित 'विजय स्तंभ' एवं 'कीर्ति स्तंभ' भारतीय स्थापत्य कला के बेजोड़ नमूने हैं। और ऐसे स्तंभ विश्व में कहीं नहीं हैं। विभिन्न संस्कृतियों का केन्द्र, तीर्थराज पुष्कर और ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती की दरगाह के कारण अजमेर नगर अंतर्राष्ट्रीय पर्यटन स्थल बन गया है। किशनगढ़ भी किशनगढ़ चित्र शैली के लिए विश्व विख्यात है। राजस्थान की देशी चित्रकला में मुगलशैली के प्रभाव स्वरूप अनेक लघुचित्र शैलियों का जन्म हुआ जिनके विकासक्रम में 18वीं से 19वीं शताब्दी के मध्य भारत में मेवाड़, बूंदी, कोटा, जयपुर, बीकानेर और किशनगढ़ में चित्रकला शैलियों के अनेक केन्द्र विकसित हुए जो आज पर्यटकों को आकृष्ट करते हैं।

प्राकृतिक सुषमा और विभोरित करने वाली वनस्थली का पर्वतीय आरामस्थल आबू पर्वत भी सैलानियों का सुख हैं। सीमांत नगर जैसलमेर राजस्थान के पश्चिमी सीमांत पर बसा है जो दुर्ग, हवेलियों, अपनी ऐतिहासिकता, कलाकृतियों और संग्रहालय के लिए विश्व के पार-द्वारा तक प्रसिद्ध हैं। घना-पक्षी अभयारण्य के लिए भरतपुर भी पर्यटक दृष्टियां बांधता है तो भित्ति चित्रकला एवं हवेलियों के लिए शेखावटी जनपद भी विदेशी आंखों से दूर नहीं होता है।

राजस्थान के दुर्गों में जयपुर में नाहरगढ़ एवं जयगढ़, समीप ही सवाई माधोपुर में रणथम्भौर, उदयपुर में कुंभलगढ़ दुर्ग, अजमेर में तारागढ़, बीकानेर दुर्ग,

शेष पृष्ठ 19 पर...

बच्चा तो कोमल पौधे की तरह होता है। इस नन्हें पौधे को मनचाही दिशा में मोड़ा जा सकता है, झुकाया जा सकता है परन्तु बड़ा हो जाने पर यदि उन्हें झुकाने की कोशिश करेंगे तो डाली टूट जायेगी अर्थात् संस्कारों की नींव बचपन में ही डाल दी जाती है, यदि बड़ा हो जाने पर उन्हें कुछ अच्छी बात सिखाने-समझाने की कोशिश करेंगे तो वे सीखने की बजाय पलट कर तड़ातड़ नकारात्मक जवाब-सवाल करेंगे परन्तु विडंबना यह है कि अधिकांश माता-पिता यह धारणा बनाये रखते हैं कि उनका बच्चा युवक हो जाने पर सब कुछ उचित-अनुचित सीख जायेगा, भले-बुरे की समझ आ जायेगी परंतु सच्चाई यह है कि वे बाद में बिल्कुल नहीं सुधरते।

संस्कार क्या है ?

• आर.जे. मौर्य •

संस्कार के बारे में बड़ी भ्रांतियां हैं। पढ़े-लिखे लोग यहां तक कि हमारे शिक्षाविद् और सरकार भी यह नहीं समझती है कि संस्कार किसे कहते हैं। प्रायः अधिकांश लोग शिक्षा देने को ही संस्कार समझते हैं जबकि दोनों अलग-अलग विषय हैं। हां, शिक्षा संस्कार का एक अंग हो सकती है परन्तु संस्कार निर्माण में इसकी भूमिका नगण्य है। शिक्षा का संबंध भौतिक पदार्थों के ज्ञान से, संसार के ज्ञान से और बुद्धि को प्रखर करने से है, तरह-तरह की सूचनाएं और जानकारियां बटोरने से है जबकि संस्कार का संबंध चारित्रिक उत्थान, नैतिक आचरण और मानव मूल्यों के संरक्षण और विकास से है, आत्मिक जागरण से है। शिक्षा के माध्यम से मस्तिष्क को कम्प्यूटर बनाने का प्रयास तो किया जा रहा है परन्तु मानव चेतना और चरित्र का विकास बहुत पीछे छूट रहा है। बुद्धि तो प्रखर हो जाती है परन्तु चेतना अज्ञान के कीचड़ में ही लोट-पोट लगाती रहती है। बुद्धि और चेतना के बीच इस भारी अंतराल और असंतुलन के कारण ही समाज में नाना प्रकार की समस्याएं और विषमताएं उठ खड़ी हुई हैं। चेतना और संवेदना विकसित न होने के कारण कॉलेजों से प्राप्त बड़ी-बड़ी डिग्रियां बेकार साबित हो रही हैं। हर तरफ तेज बुद्धि का दुरुपयोग किया जा रहा है। चालाक और कुटिल बुद्धि शिक्षित लोगों को भी दुष्टता, दुर्जनता, कठोरता, भ्रष्टता, स्वार्थपरता, अनीति, अहंकार और अन्याय की ओर ले जाती है। शिक्षा प्राप्त कर तेज बुद्धि का मनुष्य दुरुपयोग न करे केवल मानव कल्याण में ही उसका उपयोग करें इसके लिये बहुत जरूरी है कि शिक्षा के साथ-साथ चेतना और चरित्र का भी विकास हो। चेतना और चरित्र विकसित होता है अच्छे संस्कार निर्माण से।

कुछ लोग धार्मिक रीति-रिवाजों के पालन करने, दशहरा-दीवाली, होली, रक्षाबंधन का त्यौहार मनाने, व्रत-उपवास रखने, तीर्थाटन करने आदि बाह्य क्रिया-कलापों को ही संस्कार समझते हैं और अपने को बहुत संस्कारवान् सिद्ध करते हैं और कुछ लोग जन्म से मृत्यु तक किये जाने वाले धार्मिक, सामाजिक कर्मकाण्डों षोड्स संस्कारों को ही संस्कार मानते हैं। परन्तु वास्तव में इन सब परंपराओं के पालन से संस्कार का कोई वास्तविक संबंध नहीं है। ये सब सदियों से प्रचलित रीति-रिवाज और मान्यताएं हैं। परंपरागत रूप से इनका पालन भले ही करें परन्तु इन औपचारिकताओं को निभाने या बाह्य क्रियाकलापों को करने से मानव की भीतरी चेतना और चरित्र में, उसके स्वभाव और व्यवहार में, उसके विचार, वाणी और कर्म में कोई परिवर्तन नहीं आता। वह वैसा ही दुष्ट और दुर्जन बना रहता है। हां, इसमें से यदि अंध-परंपराओं और रूढ़ियों को निकाल दिया जाये तो ये क्रियाकलाप कुछ हद तक संस्कार निर्माण में भूमिका अदा कर सकते हैं। माता-पिता के मिलन और गर्भधान का क्षण, गर्भकाल में मां का पालन-पोषण एवं मानसिक स्थिति तथा शिशु के जन्म के बाद का समय संस्कार निर्माण की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण होता है। अधिकांश लोग इसे गंभीरता से नहीं लेते। फिर आखिर सच्चे अर्थों में संस्कार क्या है? संस्कार है किसी बालक का सिर्फ बौद्धिक विकास ही नहीं, उसका शारीरिक, मानसिक, प्राणिक, नैतिक, चारित्रिक, आत्मिक और आध्यात्मिक विकास करके उसे 'पूर्ण मनुष्य' या देव बनाना। संस्कार है मानव के दुर्गुणों का परिष्कार और शोधन करना एवं मानव की पतित चेतना को सुधारने और बदलने की प्रक्रिया। वैज्ञानिक खोजों के प्रकाश में धार्मिक अंधविश्वासों और कुरीतियों को त्यागने हेतु बच्चों को प्रशिक्षण देना, स्वास्थ्य-सफाई और नागरिकता के प्रति उन्हें जाग्रत करना। नकारात्मक विचारों को निकाल कर सकारात्मक तत्त्व भरना। हम ज्ञानपूर्वक या अज्ञानपूर्वक जो भी स्थूल कर्म जीवन में करते हैं वह अंततोगत्वा हमारे अवचेतन में अपने आप उतरकर सूक्ष्म संस्कार बन जाता है जो स्थूल से भी अधिक शक्तिशाली होता है। माता-पिता के खून से जीन के

द्वारा जो हम वंशानुगत प्राप्त करते हैं वह भी संस्कार कहलाता है और स्वयं अपने कर्मानुसार पिछले जन्मों से लेकर इस संसार में हम आते हैं वह भी संस्कार है। ये तीनों प्रकार के संस्कार मानव जीवन की गाड़ी हांकते हैं। चूंकि शुभ और अशुभ दोनों ही संस्कार बच्चों में होते हैं। अतः इस अशुभ को निकालकर शुभ तत्त्व भरना ही संस्कार देना कहलाता है।

संस्कार शब्द अपने आप में बहुआयामी अर्थ रखता है। इसका पर्यायवाची शब्द 'चरित्र निर्माण' भी हो सकता है। यह व्यक्तिगत सुधार से प्रारंभ होकर परिवार सुधार, समाज सुधार, देश और सारे विश्व तक जाता है। वास्तव में संस्कार या चरित्र समस्त मानव प्राणियों के साथ मानवतापूर्ण व्यवहार करने और जीवन जीने की कला सिखाता है। यह अज्ञान से ज्ञान की ओर, बंधन से मुक्ति की ओर तथा भोग से त्याग एवं योग की ओर ले जाता है। एक पुत्र का माता-पिता के साथ, माता-पिता का पुत्र के साथ, पति का पत्नी के साथ, पत्नी का पति के साथ, सास-ससुर का बहू के साथ ,बहू का सास-ससुर के साथ, शिष्य का गुरु के साथ, गुरु का शिष्य के साथ, मातहत का अधिकारी के साथ, अधिकारी का मातहत के साथ, नौकर का मालिक के साथ और मालिक का नौकर के साथ, एक जाति का दूसरी जाति के साथ, एक धर्मावलम्बी का दूसरे धर्मावलम्बी के साथ, एक मनुष्य का दूसरे मानव प्राणियों के साथ, एक देश का दूसरे देश के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये इसका तौर-तरीका और मर्यादाओं का पालन करना संस्कार कहलाता है। इतना ही नहीं इसके अंदर दैनिक जीवन के सारे क्रियाकलाप, जीवन जीने के सारे नैतिक मूल्य और मर्यादाएं समाहित होती हैं।

सुबह से रात्रि तक हमारे चलने-फिरने, उठने-बैठने, खाने-पीने, सोने-जागने, पढ़ने-लिखने, हंसने-बोलने और काम करने का तरीका सब कुछ संस्कार कहलाता है। यदि इनका तरीका अशिष्ट है, बुरा है तो लोग उसे बुरे संस्कार वाला कहते हैं। यहां तक कि जो कुछ अपनी आंखों से अच्छा-बुरा देखते रहते हैं, कानों से अच्छा-बुरा सुनते हैं, हाथों से कार्य करते हैं, मस्तिष्क से विचार और चिंतन करते हैं, जैसा साहित्य हम पढ़ते-लिखते हैं वह सब हमारे संस्कार का एक हिस्सा बन जाता है और अवचेतन में अंकित हो जाता है। अच्छा देखने, अच्छा सुनने, अच्छा बोलने, अच्छा लिखने, अच्छा पढ़ने, अच्छा चिंतन करने और अच्छा कर्म करने से अच्छा यानि शुभ संस्कारों का निर्माण होता है और इसके विपरीत आचरण करने पर बुरा यानि अशुभ संस्कार बनते हैं। जिस विषयवस्तु को हम बार-बार पढ़ते हैं, जिस दृश्य को बार-बार आंखों से देखते हैं, जिस शब्द को बार-बार कानों से सुनते हैं वह चाहे शुभ हो या अशुभ हमारे मन की चेतना तक ही सीमित नहीं रहता बल्कि नीचे अवचेतन मन के महासंग्रहालय में उतर कर स्थायी रूप से जमा हो जाता है। महायोगी श्री अरविंद कहते हैं कि यह अवचेतन, जागृतमन से अधिक शक्तिशाली होता है। यही अवचेतन मन हमारे अधिकांश क्रियाकलापों को यांत्रिक रूप से चलाता है। जाग्रत मन को इसकी जानकारी नहीं हो पाती, जिसके कारण भूल और गलतियां होती हैं। तात्पर्य यह है कि हमें हर क्षण सचेतन और सतर्क रहना चाहिए कि हम कौन-सा शुभ संस्कार ग्रहण कर रहे हैं और कौन-सा अशुभ? और इसका क्या परिणाम हो सकता है? हमारे बच्चे और हम वही पढ़ें, वही देखें, वही लिखें, वही बोलें और कानों से वही सुनें जिससे शुभ संस्कारों का निर्माण हो और अशुभ का क्षय हो। अपने जीवन की बागडोर अवचेतन के हाथों में नहीं चेतन को हाथों में सौंपे।

मानव जीवन में संस्कार निर्माण की आवश्यकता पहले भी थी। आज भी है और भविष्य में भी रहेगी। इसके बिना धरती पर मानव जीवन न तो सुरक्षित रह सकता और न विकसित और समृद्ध हो सकता है। परन्तु महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि संस्कार की शुरूआत कहां से करें? इसकी शुरुआत मां के गर्भाधान के तत्काल बाद नौ माह गभावस्था में, फिर शैशवावस्था, बाल्यावस्था, किशोरावस्था और युवावस्था यानि 20-25 साल तक निरंतर चलती रहनी चाहिये तभी कोई बालक अच्छा इंसान बन सकता है और संस्कारों का प्रभाव स्थाई हो सकता है। बाद में बिगड़ने की संभावना नगण्य रहती है। शैशववस्था से युवावस्था तक बढ़ती उम्र और बुद्धि के अनुसार हर स्तर पर भिन्न-भिन्न प्रकार के संस्कारों को दिये जाने की जरूरत होती है। संस्कार देने की प्रथम शुरुआत माता के गर्भ से ही होती है। इसका बड़ा महत्त्व होता है। परन्तु बहुतों को इसकी जानकारी नहीं होती। गर्भाधान के दौरान माता जिस प्रकार के माहौल में रहती है, जैसा भोजन करती है, जैसा साहित्य पढ़ती है, जैसा दृश्य देखती है, जैसा विचार और चिंतन करती है, उसकी मनोदशा जैसी होती है इन सबका सीधा प्रभाव पेट में पल रहे बच्चे (भ्रूण) पर पड़ता है। हमने अपनी आंखों से 5-6 माह की गर्भवती महिला को बुरी तरह पिटते देखा है, बेहद तनाव और लड़ाई-झगड़े के माहौल में रहते देखा है। ऐसी मां के पेट से किस तरह का बच्चा पैदा होगा आप खुद अनुमान लगा सकते हैं। बच्चे का जन्म हो जाने पर उसे संस्कार देना तो संस्कार का दूसरा चरण है। संस्कार निर्माण की प्रक्रिया और आवश्यकता को निम्नलिखित उदाहरणों से अधिक स्पष्ट किया जा सकता है जिस प्रकार बॉक्साइट पत्थर, फैक्ट्री तक लाकर उसे धमन भट्टी में गलाकर साफ करके बहुपयोगी अल्यूमीनियम की चादरें और सरिये निर्मित किये जाते हैं, उससे नाना प्रकार के बर्तन बनते हैं, भवनों के निर्माण में उपयोग होते हैं। जिस प्रकार कच्चे आयरन 'ओर' को खदानों से निकालकर उसकी अशुद्धियों को जलाकर

लोहे की मजबूत पटरियां और गार्डर बनते हैं, छड़ें बनती हैं, जिस प्रकार अशुद्ध सोने को आग की भट्टी में पिघलाकर शुद्ध करके उससे बहुमूल्य जेवरात बनते हैं उसी प्रकार अनपढ़, अशुद्ध मानव की चेतना और चरित्र को संस्कार की भट्टी में जलाकर उसे शुद्ध मानव बनाया जा सकता है। वह समाज के लिये उपयोगी इंसान बन सकता है। उसकी पशुता का शोधन और रूपांतर करके उसे दानव से देव बनाया जा सकता है। उसके स्वभाव और व्यवहार को बदला जा सकता है। अवगुणों को निकालकर कर सदगुणों को भरा जा सकता है। इतना ही नहीं संस्कार में पूर्ण दीक्षित होकर एक दिन वह इंसान से भगवान बन सकता है। धरती पर जन्म लेने वाला कोई भी व्यक्ति न तो पूर्णरूप से अच्छा होता है और न पूर्णरूप से बुरा। शुभ और अशुभ दोनों तत्वों से मिलकर मानव सत्ता बनती है। अतः माता-पिता और शिक्षकों का दायित्व है कि बालक के स्वभाव, व्यवहार और उसकी बुद्धि की सही परख करके उसके अंदर जो दुर्गुण हैं उनका शोधन और रूपांतरण करके उसे सद्गुणों में बदलें और जो सद्गुण हैं उनकी मात्रा और क्वालिटी में अधिकाधिक वृद्धि करें। दुर्गुणों का शोधन करके सद्गुणों की स्थापना करना ही संस्कार है।

जिस प्रकार मिट्टी के बर्तन बनाने वाला कुम्भकार गीली मिट्टी को बार-बार गूंथ कर उसे गोल चाक पर रखकर चाक को घुमाता है। घूमते हुए चाक पर रखी गीली मिट्टी को हाथ से सहला कर, ठोंक-पीटकर मनचाहा आकार देकर सुंदर बर्तन बना लेता है उसी प्रकार माता-पिता भी एक कुम्भकार की तरह है और अबोध बालक गीली मिट्टी के लौंदे की तरह। जिसे तराशकर सुंदर आकार-प्रकार और संस्कार देना माता-पिता का फर्ज है। जिस प्रकार आड़े-टेढ़े कठोर पत्थर को छेनी से काट-काट कर एक कुशल मूर्तिकार नाना प्रकार की सुंदर मूर्तियां तैयार करता है, मूर्तियां जीवंत हो उठती हैं, वे पूजनीय हो जाती हैं उसी प्रकार कुशल माता-पिता और शिक्षक भी अनगढ़-अबोध बालक को संस्कार रूपी हथौड़े से काट-बांटकर उसे अच्छा इंसान, पूज्य इंसान बना सकते हैं। बच्चा तो कोमल पौधे की तरह होता है। इस नन्हें पौधे को मनचाही दिशा में मोड़ा जा सकता है, झुकाया जा सकता है परन्तु बड़ा हो जाने पर यदि उन्हें झुकाने की कोशिश करेंगे तो डाली टूट जायेगी अर्थात् संस्कारों की नींव बचपन में ही डाल दी जाती है, यदि बड़ा हो जाने पर उन्हें कुछ अच्छी बात सिखाने-समझाने की कोशिश करेंगे तो वे सीखने की बजाय पलट कर तड़ातड़ नकारात्मक जवाब-सवाल करेंगे परन्तु विडंबना यह है कि अधिकांश माता-पिता यह धारणा बनाये रखते हैं कि उनका बच्चा युवक हो जाने पर सब कुछ उचित-अनुचित सीख जायेगा, भले-बुरे की समझ आ जायेगी परंतु सच्चाई यह है कि वे बाद में बिल्कुल नहीं सुधरते।

एच–104, चिनार रिट्रीट, मैदा मिल के सामने,
अरेरा हिल्स, भोपाल – 462011 (मध्य प्रदेश)

झाँकी है हिन्दुस्तान की

◆ अगले साल अक्टूबर 2009 में होने जा रहे कॉमनवेल्थ खेलों से पहले राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र में एक अत्याधुनिक ट्रैफिक और संचार नेटवर्क काम करने लगेगा। इसके लिए केंद्रीय केबिनेट ने 200 करोड़ की लागत वाली एक महत्वपूर्ण योजना को मंजूरी दे दी है। इसके तहत दिल्ली पुलिस के लिए एक कारगर मॉडल ट्रैफिक सिस्टम तैयार हो सकेगा।

इस योजना का मुख्य उद्देश्य आसपास के उपनगरों से दिल्ली में दाखिल होने वाले ट्रैफिक में बेतहाशा बढ़ोतरी और राष्ट्रमंडल खेलों के मद्देनजर राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र में अत्याधुनिक ट्रैफिक और संचार नेटवर्क से जुड़ी एक इंटेलिजेंट परिवहन प्रणाली विकसित करना है। इस नई प्रणाली के तहत विभिन्न सेवाओं के एकीकृत संचालन के लिए डाटा संचार नेटवर्क का इस्तेमाल किया जाएगा और 30 हजार किलोमीटर की सड़कों पर आवागमन को सुरक्षित बनाया जा सकेगा। इसका पहला चरण 210 किमी. दूरी के साथ 67 मार्गों को समाहित करेगा। बाद के चरणों में इसका विस्तार राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र की 30,000 किमी. सड़कों तक किया जाएगा, जिसमें लगभग 500 सिग्नल होंगे।

◆ 15 अगस्त 1942 को यानी 67 वर्ष पूर्व दिल्ली में मार्शल-लॉ लगा हुआ था। उस दौरान लोगों का अपने घरों से बाहर निकलना तो दूर, बल्कि मकान के छज्जों पर निकलकर बाहर सड़कों पर देखना तक दूभर हो गया था। जरा-सी आहट होने पर अंग्रेजी फौज के जवान उस व्यक्ति को अपनी गोली का निशाना बनाकर मौत के घाट उतार देते थे। दिल्ली में मार्शल-लॉ और कर्फ्यू का यह सिलसिला लगभग दो सप्ताह तक चला था। यह बात वर्ष 1942 की है जब देश आजाद नहीं था और अंग्रेजों का शासन था। 9 अगस्त 1942 को मुंबई में महात्मा गांधी ने अंग्रेजों भारत छोड़ो आंदोलन शुरू किया था। लेकिन उस आंदोलन के शुरू होने के बाद गांधीजी सहित कांग्रेस के अनेक नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया और यह बात पूरे देश में आग की तरह फैल गई। बस फिर क्या था। उसके बाद दिल्ली शहर और गांव-गांव में लोगों में देश को आजाद कराने के लिए जुनून सवार हो गया था।

संयम है संस्कृति का आधार

• सत्यनारायण भटनागर •

यह दुनिया बनी तब से मानव जाति ने विकास के नये-नये आयाम जोड़े। हर देश ने अपनी आवश्यकता और स्वभाव के अनुसार सभ्यता और संस्कृति विकसित की। यह इक्कीसवीं सदी इसी का परिणाम है। इस प्रगति में मानव जाति का अथक परिश्रम है। खून और पसीना है। मानव जाति की तपस्या का परिणाम है कि आज हम जंगल राज से सुसंस्कृत राज की ओर कद बढ़ाते हुए आगे की योजना बना रहे हैं। इस प्रगति के इतिहास में हमारे परिश्रम और तपस्या से कुछ नियम तय हुए हैं। ये व्यवस्था के नियम हैं। इसमें हैं अनुशासन, मानवीय उदात्त धारणा, नैतिकता के स्वर और इन सबसे गुंथी है विकास की यात्रा।

जंगली अवस्था में मानव जाति प्राकृतिक अवस्था में रहती थी। जंगल के प्राकृतिक नियम सब पर लागू होते थे। गृह विहीन शिकार एक मात्र जीवित रहने का सहारा था। तब एक परिवार बना, समाज बना, राज्य बना, नियम बने और जीवन सुचारु रूप से चल पड़ा। उस प्रकृति की आधारशिला थी परिवार। भारत में हम इसे गृहस्थाश्रम कहते हैं। गृहस्थ आश्रम में हम प्रेम, अपनत्व, सहयोग, त्याग आदि गुणों को सीखते हैं और उन्हें सम्पूर्ण मानव जाति व प्राणी मात्र के लिए अपनाते हैं।

गृहस्थ आश्रम एक पवित्र संस्थान हैं। उसकी नींव शुद्ध प्रेम और विश्वास पर खड़ी है। इसी के आधार पर समाज और राज्य की नींव भी एक-दूसरे पर विश्वास और प्रेम पर खड़ी है। यदि मानव संबंधों में विश्वास न हो तो यह दुनिया चल ही नहीं सकती। पति-पत्नी, माता-बच्चे, भाई-बहन इन सब रिश्तों में जहां प्रेम का बंधन है, एक-दूसरे पर विश्वास का भरोसा है। वहीं कुछ नैतिक बंधन है, मर्यादा है। जिसका पालन अनिवार्य है। ये विश्वास और नैतिक मर्यादा के बंधन हैं जो हमें पशुओं से अलग करते हैं। पशु शुद्ध प्राकृतिक जीवन यापन करते हैं। वे प्राकृतिक नियमों से संचालित होते हैं। मानव जाति के अपने ही नियम हैं जिनके पालन से ही एक सभ्यता और संस्कृति का विकास हुआ। इसमें संयम एक आवश्यक तत्त्व है, जो पशुओं में नहीं पाया जाता है। संयम की साधना संस्कृति की विकास यात्रा का एक आवश्यक तत्त्व है। जीवन साहित्य में 'गांधीवादी विचार और स्वतंत्र सेनानी' काका कालेलकर लिखते हैं 'संयम संस्कृति का मूल है। विलासिता निर्बलता अनुकरण के वातावरण में संस्कृति का उद्‌भव होता है और न विकास। संस्कृति समाज की आत्मा होती है। हम संयम को खोकर आत्मा को खो जाते हैं।'

हिन्दी के साहित्यकार सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' अद्यतन में लिखते हैं 'सांस्कृतिक अस्मिता नकल से नहीं बनती।' विदेशी मनोवृत्तियां और मनोभाव आयातीत करके भी नहीं बनती। अपनी ही सही पहचान से बनती है। सांस्कृतिक जीवन के बारे में ही यह बात सबसे उचित सत्य है कि 'हम वही बन सकते हैं जो हम हैं।'

इस पृष्ठभूमि में हमें यह विचार करना है कि क्या हम अपनी संस्कृति के अनुरूप कार्य और व्यवहार कर रहे हैं। आजादी के बाद भारतीय संविधान के प्रभावशाली होने पर हमें स्वतंत्रता का मूलभूत अधिकार मिला। हमारे विकास के लिए यह एक आवश्यक कदम था। किन्तु हमारे देश में इस अधिकार का अमर्यादित उपयोग हुआ कि हम अपनी सभ्यता और संस्कृति बिलकुल भूल गये। सच कहा जाये तो हम सचमुच नकलची बंदर बन गये हैं। हमारे हाथ में स्वतंत्रता का उस्तरा भी है और विलासिता अनुकरण का तर्क भी। हम सिनेमा, दूरदर्शन पर नंगेपन को इस कदर हावी होते देख रहे हैं कि लगता ही नहीं कि हम भारतीय संस्कृति को जानते, समझते हैं। हमारी सभ्यता और संस्कृति के नाम पर भी यही सब हो रहा है और इस कारण सबसे ज्यादा असम्मान मिल रहा है हमारी मां-बहनों को। सिनेमा और दूरदर्शन का सकारात्मक उपयोग होने की बजाय उसे शुद्ध मनोरंजन का डिब्बा घोषित कर दिया गया है। इतना भीषण आक्रमण है यह कि आम नागरिक कुछ बोल ही नहीं पा रहा।

भीषण परिणाम : इस स्थिति के अत्यंत भीषण परिणाम अब सामने आ रहे हैं। समाचार माध्यमों से ही समाचार प्राप्त हो रहे हैं कि पति-पत्नी एक-दूसरे की हत्या के लिए सुपारी दे रहे हैं। पिता की हत्या बेटा कर रहा है। तो भाई बहन के साथ बलात्कार कर रहा है। पिता अपनी ही बेटी के साथ बलात्कार कर रहा है। मां अपने पुत्र-पुत्री की हत्या कर रही है। कभी सोचा था? मां अपनी संतान के लिए स्वयं मर सकती है। उसे मार नहीं सकती। अपहरण, बलात्कार, हत्याएं परिवार के अंदर ही प्रतिदिन घटित हो रही हैं। समाचार और टी.वी. प्रतिदिन यह समाचार दिखा रहे हैं। नियमित रूप से ऐसे अपराधों का एक कार्यक्रम हर चैनल पर प्रसारित हो रहा है और हम उसे देख रहे हैं।

कहां है सभ्यता और संस्कृति की मर्यादा। विलासिता का नंगा नाच है यहां, जहां मानवीय संबंधों की मर्यादा का प्रश्न उठाया ही नहीं जा सकता। जर्मन विद्वान सी.जे. पेबर ने लिखा है 'सभ्य जंगली सबसे बुरा जंगली होता है।' खलील जिब्रान ने व्यंग्य में कहा है 'प्राण बचाना चाहते हो तो जल्दी भागो, सभ्यता हमारे पीछे पड़ी है।' सच है भरे पेट की भूख अधिक तीव्र होती है।

पशुता की ओर कदम : ऊपर जितनी घटनाओं का वर्णन है वे सब पशुता की ओर हमारे कदम हैं। मेरी राय में तो पशुता से भी गिरे कदम हैं। पशु तो फिर भी प्राकृतिक नियमों से बंधे हैं। हम तो सब नियमों को ताक में रखकर कार्य कर रहे हैं। हमने पहले संयुक्त परिवार

समाप्त किये। अब एकल परिवार में भी आधुनिकता के नाम पर तनाव पैदा कर रहे हैं, जिसमें कोई किसी पर प्रेम, समर्पण, त्याग का दावा नहीं कर सकता। आज विवाह के बाद बेटी बहू बनकर आती है तो उसके पास पुलिस थाने का नंबर होता है। जो मतभेद पहले आपसी विचार-विमर्श से निपटते थे, वे अब पुलिस स्टेशन, परिवार केन्द्र या न्यायालय में निपटने को तैयार हैं। पुलिस स्टेशन को परिवार में प्रवेश के लिए वैधानिक रूप से द्वार खोल दिया गया है।

पति-पत्नी के रिश्ते दबाव व कानूनी दांव पेंच से समाधान पायेंगे तो परिवार और बच्चों के आपसी संबंधों का क्या होगा। बच्चे कहां सीखेंगे प्रेम, सहयोग, त्याग, अनुशासन, बुजुर्गों का सम्मान। बच्चों की प्रथम पाठशाला परिवार ही है। वैसे भी किसी के पास बच्चों के लिए समय नहीं है। इस स्थिति में उन्हें भगवान भरोसे ही समझा जा सकता हैं

पशुओं में अपनी संतान का प्रेम व विश्वास होता है। वे अपने माता-पिता से ही सीखते हैं। हमारे पास समय नहीं है। हम तनाव ग्रस्त हैं। इसलिए हमने उन्हें टी.वी. के भरोसे छोड़ दिया है। व जो सीख सकें सीख जायें परिणाम क्या होगा।

अविश्वास का परिणाम : एकल परिवार की अवधारणा भी अब खतरे में है। जब हम एक-दूसरे पर अविश्वास करेंगे तो कैसा परिवार? फिर कहां है परिवार का आनन्द। विश्वास की आधार शिला पर तो यह संबंध खड़े हैं। यदि शंका, संदेह इसके बीच में आये तो यह ताश के पत्ते की तरह भरभरा कर समाप्त हो जायेगा।

विषाक्त होता वातावरण : परिवार के छाये खतरे के इस बादल ने सारे वातावरण को विषाक्त बना दिया है। नारी देह शोषण की अनेक कहानियां प्रतिदिन सामने आ रही हैं। दुनियां में गरीबी के कारण नारी देह का बिकना तो सदा से रहा है। लेकिन आज अच्छे घरों की पढ़ी-लिखी युवतियां भी इस धंधे में लिप्त पाई जा रही हैं। यह फैशन और बदलाव के लिए इस मौज-मस्ती को माध्यम समझ रही है। ऐसा भारत के इतिहास में न कभी हुआ है और न सोचा गया है। इसे तर्क संगत ढंग से स्वतंत्रता के नाम पर प्रस्तुत किया जा रहा है। यह पतन की पराकाष्ठा है। हम अपनी लज्जा खुलेआम बिना किसी विवशता के लिए मौज-मस्ती के लिए बेचने लगे तब पशु में व इनमें क्या अंतर है। हम पशुओं से गये बीते हो रहे हैं। क्योंकि पशु जो कुछ करते हैं वे एक प्राकृतिक नियम के अंतर्गत करते हैं।

सभ्यता और संस्कृति को चुनौती : यह सब हो रहा है पूंजी के दम पर। टी. वी. एक बाजार बन रहा है। नारी देह भी बाजार में बिकाऊ वस्तु के रूप में प्रस्तुत की जा रही है। हजारों वर्षों के त्याग तपस्या से जो संस्कृति खड़ी थी उसमें सेंध लगाने के लिए यह तैयारी है। संयम के महत्त्व का मजाक बनाया जा रहा है। जबकि वह मानव संस्कृति की आधार शिला है। साहित्यकार विमल मित्र, साहब बीवी गुलाम में कहते हैं 'जी जो चाहता है वह तो पशु भी करता है। फिर आदमी की अपनी विशेषता कहां है? संयम श्रृंखला साधना सब कुछ मनुष्य के लिए ही है।' साहित्यकार रांगेय राघव ने सच कहा है 'संयम का अर्थ घुटना और सड़ना नहीं है स्वस्थ बहाव है।'

समाज को जागृत करने की आवश्यकता : यह एक चिंतन का विषय है। आज लोग सहज भाव से कह देते हैं कि ऐसी अनैतिकता सदा से होती रही है। मीडिया के कारण अब इन घटनाओं को प्रचार मिलने लगा है। हमारा मत है कि मीडिया के कारण ही घटनाओं को महत्त्व मिलने लगा है। मीडिया न सिर्फ इन घटनाओं का प्रचार कर रहा है वरन् वह इनको समर्थन और प्रोत्साहन भी दे रहा है। वह इन घटनाओं में रस ले रहा है। उसे सभ्यता संस्कृति से कुछ लेना देना नहीं है। वह बाजार का अंग है। वह लाभ के गणित को देख रहा है। हमारे अधकचरे सोच के विचारक उसकी चमक-दमक और व्यापक प्रचार के आगे नतमस्तक से खड़े हैं।

यदि हमारे जीवन से संयम का तत्त्व हटा दिया गया तो संस्कृति के नाम पर फिर कचरा ही शेष बचेगा। सारी मर्यादा संयम की आधार शिला पर खड़ी है। हम नाच गानों को सांस्कृतिक कार्यक्रम कहने लगे हैं। लेकिन नाच गाने संस्कृति नहीं हैं। संयम को संस्कृति के केन्द्र से हटाने के लिए सिनेमा संस्कृति तक का राग अलापा जाने लगा है जबकि सिनेमा शुद्ध लाभ हानि के आधार पर तैयार किये जाते हैं। उनका तर्क है हम जो देखना चाहते हैं, वे वही तो दिखाते हैं। इसलिए समय की आवश्यकता है कि हम इस बाजारवाद को सबक सिखाने के लिए न सिर्फ सचेत हों, वरन् कटिबद्ध भी हों अन्यथा वे भोग विलास, हिंसा, ईर्ष्या, द्वेष का रायता बना बनाकर भारत को भोग भूमि बनाने में कोई कसर नहीं छोडेंगे।

आज भारत में समाज नाम की चीज समाप्त सी हो गई है। जो हो रहा है, होने दो। हमें क्या? हमारे यहां सब ठीकठाक हैं। लेकिन यह सोच गलत है। यह आग जब हमारे पास आयेगी तब हम अकेले पड़ जायेंगे। इसलिए भले लोगों को संगठित हो इसका विरोध करना चाहिए। महिला संगठन क्यों शांत है। यह समझ के परे है। हर घटना पर आवाज उठाने वाले ये संगठन अगर मुट्ठी तान लें तो दुनिया की कोई ताकत फिर नंगे नाच करने के पहले सौ बार सोचेगी। हम याद करें सत्ता पक्ष और विपक्ष यौन शिक्षा को पाठशालाओं में प्रारंभ करने के लिए तत्पर थे। मीडिया भी पक्षधर था। किंतु प्रबुद्ध नागरिकों, शिक्षकों के विरोध के फलस्वरूप यह विचार फाईलों में बंद करना पड़ा। अगर हम नारी गरिमा की रक्षा और संस्कृति के लिए भी आवाज उठायें तो कोई कारण नहीं है कि यह मनमानी चलती रहे। ये मदमस्त विलासिता के हाथी निहायत डरपोक हैं। इन्हें बाजार की चिंता है, लाभ की चिंता है। इन्हें किन्हीं विचारों, उद्देश्यों से कुछ भी लेना देना नहीं है।

2, एम.आई.जी. देवरा
देवनारायण नगर, रतलाम (म.प्र.) 457001

भारतीय अध्यात्मप्रधान संस्कृति

• सुषमा जैन •

ईसाई धर्मगुरु पोप बेनेडिक्ट सोलहवें द्वारा भारत द्वारा कुछ राज्यों में मतांतरण पर रोक लगाने के लिए कानून बनाने के प्रयासों की निंदा कर उन्हें कड़ाई से रोकने की अपील करना भारत के अंदरूनी मामलों में दखल देने की नापाक, धिनौनी और खोखली कौशिश तो है ही साथ ही भारत की भावभूमि, उसकी अस्मिता की अखंडता, उसकी अविछिन्न सांस्कृतिक सुगंध और उसके जनमानस के परिवार प्रधान राष्ट्र भाव पर तीव्र असहनीय प्रहार भी है। भारत की सहनशीलता को कायरता समझ बैठने वाले पोप की इस हरकत का मुंह तोड़ जवाब दिया जाना चाहिए था, जबकि विदेश मंत्रालय द्वारा भारत की पंथनिरपेक्षता और सभी उपासना पद्धतियों के अनुयायियों को समान अधिकार प्राप्त होने का स्पष्टीकरण देकर कर्त्तव्य की इतिश्री कर ली गई।

क्या पोप को साफ साफ शब्दों में यह नहीं बता दिया जाना चाहिए था कि मतांतरण पर रोक के लिए कानून न बनाये जाने का यह अर्थ तो नहीं भारत में बड़े पैमाने पर कार्य कर रही उन ईसाई मिशनरियों को खुली छूट दे दी जाये। वे अपने धर्म ईसाइयत की महानता का बखान, दूसरे धर्म की बखिया उधेड़-उधेड़ उसके अनुयायियों को हेय दृष्टि से देख, उनके सम्मानजनक जीने के नैतिक और संवैधानिक अधिकार को कुचल कर देश को टुकड़ों-टुकड़ों में बांटने में जुट गई हैं, जो धोखाधड़ी दबाव और लालच के हथियार से गरीबों, असहायों और पीड़ितों को निशाना बनाकर उन्हें धर्म परिवर्तन के लिए विवश कर रही है।

पूरा देश जानता है कि इन ईसाई मिशनरियों ने पहले बहुराष्ट्रीय कंपनियों के माध्यम से हमारी सरकारों में भ्रष्टाचार के बीज डाल उद्योग धंधों को चौपट किया, विज्ञापनों के जरिये लोगों की आस्था, विश्वास और परंपरा को तोड़ उन्हें दाने-दाने को मोहताज कर दिया। भूख से बिलबिलाते और बीमारी से तड़पते विवश लोगों को रोटी का टुकड़ा दिखाकर उन्हें ईसाई बनने पर विवश किया। इसके लिए हमारे देश के वे नकलची आधुनिकतावादी और विदेशपरस्त लोग भी दोषी हैं जो पश्चिमी विचारों को शासन का माध्यम और आधार बनाकर देशवासियों की आकांक्षाओं पर असहनीय प्रहार कर रहे हैं। क्या इस तथ्य से इंकार किया जा सकता है कि जून 1999 में पोप जॉन पाल को ससम्मान आमंत्रित नहीं किया गया था? क्या उनके इस बयान को नजर अंदाज नहीं कर दिया गया था कि ''अगली सदी को अंधकार से निकालकर ईसाइयत की रोशनी में ले जाने की आवश्यकता है।'' यही कारण है वह यह काम तभी ईसाई मिशनरियों को सौंप गये थे।

कितने हैरत की बात है कि जो ईसा मसीह गरीबों, दीन-दुखियों के हित चिंतक थे, उनके अनुयायी ही समृद्ध लोगों को जबरदस्ती गरीब और निरक्षर बना उन्हें धर्मान्तरण के लिए विवश कर रही है। पोप बेनेडिक्ट को शायद भारतीय इतिहास की पूरी जानकारी उपलब्ध नहीं है जिसकी धरती पर समय-समय पर होने वाले अनेक विद्रोह भी उसकी अस्मिता और अखंडता को नष्ट नहीं कर सके, जो कभी भी किसी संस्कृति का अंग नहीं बनी बल्कि उसने सभी संस्कृतियों को अपने आप में समाहित कर लिया। यहां के साधु, संत, ऋषि, मुनि, चिंतक विचारक विदेशों में जहां भी गये, उस धरती पर भारतीयता की सुगंध बिखेर आये, वह धरा भारत के लिए पूज्यनीय और वंदनीय बनकर तीर्थस्थल बन गई।

भारतीय अध्यात्मप्रधान सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की अवधारणा में सर्वकल्याण का भाव पूरी तरह से रचा बसा है। हानि, लाभ, जय-पराजय के भाव से ऊपर उठकर समबुद्धि और समभाव से भारतीय अस्मिता के शत्रुओं पर प्रहार कर उन्हें परास्त करना भारतीय संस्कृति का अभीष्ट रहा है। भारत में अनेक जातियां-प्रजातियां बाहर से आई, जिनको न केवल उचित सम्मान एवं संरक्षण प्रदान किया गया, बल्कि उन्हें अपने धर्म और रीति-रिवाजों को अपनाने की भी पूर्णतया छूट दी गई। भारत भूमि से निकलकर ही बौद्ध धर्म पूरी दुनिया में फैला। चीन, जापान देशों में बौद्धों की आज भी अच्छी खासी तादाद है लेकिन वहां बौद्धों ने भारतीय परंपरा या संस्कृति को नहीं अपनाया।

पूरी दुनिया में धर्म निरपेक्षता की अनूठी मिसाल बन चुका भारत ही मात्र एक ऐसा देश है जिसने सभी को एक साथ गले से लगाकर उन्हें फलने-फूलने

अणुव्रत अधिवेशन

2, 3, 4 अक्टूबर 2009 को

लाडनूं में

का समान अवसर प्रदान किया है। यही वह दिव्य अलौकिक देश है जहां एक साथ प्रातःकाल मंदिरों में घंटियां बजती हैं, गुरुद्वारों में गुरुवाणी का पाठ होता है, चर्चों में प्रार्थना सभाएं होती हैं और मस्जिदों में अजान सुनने को मिलती है। इसकी संस्कृति, मूल्यों और मान्यताओं के खिलाफ किया जाने वाला दुष्प्रचार निहायत ही भर्त्सनीय है। ईसा मसीह केवल ईसाइयों के ही नहीं बल्कि पूरी मानवता के मसीहा थे। उन्हें केवल एक ही परिधि, केवल एक ही समुदाय या पंथ से जोड़ना पोप जैसे धर्मगुरु को शोभा नहीं देता।

अच्छा होता पोप भारतीय संविधान में प्रदत्त कानूनों को चुनौती देने और उसके अंदरूनी मामलों में दखल देने के बजाय उन देशों की ओर अपना ध्यान केन्द्रित करते जहां समलैंगिक विवाह जैसी अप्राकृतिक करतूतों का खुलेआम दुष्प्रचार हो रहा है। लोभ लालच की नोंक पर धर्मान्तरण की इजाजत किसी को भी नहीं दी जा सकती। अन्य राज्य सरकारों की तरह यदि आवश्यक हो तो इस तरह के कानून पूरे देश में बनाये जाने चाहिएं। क्योंकि यदि मनुष्य-मनुष्य में भेद करने की खुली छूट प्रदान कर दी गई तो समर्पण, समभाव जैसे अमूल्य मानव मूल्य तिरोहित हो जायेंगे और एक अराजकता का वातावरण उपस्थित होने में देर नहीं लगेगी।

भारत को किसी से भी अपने धर्मनिरपेक्ष होने के प्रमाण-पत्र लेने की आवश्यकता नहीं है, बस पोप केवल इतना बता दें कि क्या वे वेटिकन सिटी में दूसरे धर्मों के अनुयायियों को ईसाइयों के धर्मान्तरण की अनुमति देने को राजी होंगे? यदि नहीं तो फिर इतनी चिंता क्यों? भारत के आंतरिक मामले में दखलअंदाजी करने की अनुमति किसी भी परिस्थिति में किसी को भी नहीं दी जा सकती। विदेशपरस्त लोग भी अपना दोगलापन छोड़ें वरना देश की जनता उन्हें कभी माफ नहीं करेगी। क्योंकि इस विषय पर पूरा भारत एक था और एक है और हमेशा-हमेशा एक ही रहेगा।

न्यू कृष्णा नगर, जैन बाग, वीरनगर
सहारनपुर 247001 (उ.प्र.)

'मौत का खेल'

कैसे हैं वो.....
शराब के नाम पर
जहर बेचते हैं।
मासूमों की जिन्दगी
छीन लिया करते हैं।
सह जाते हैं.....
अनाथ हुए बच्चों की
मांग के सिन्दूर की
ममता की गोद की
और करुणा-मयी,
आंसुओं के रुदन को।
निष्ठुर हैं वो
बूढ़े माता-पिता को
लड़खड़ाती बैसाखी से,
बे-सहारा कर जाते हैं।
जो बार-बार इस शहर में
मौत का खेल.....
क्यों खेला करते हैं?
अपने ही देश में
जन-जन के जीवन से,
खिलवाड़ किया करते हैं।

■ **कमल चन्द्र यादव 'कमल'**
सूरजपोल बाहर, कांकरोली
(राजसमंद–राजस्थान) 313324

षट्भुजी

बात है क्या कोना पकड़
धौंस दिखा थोड़ा अकड़
उनको थानेदार ने
समझाया है ठीक
भीख मांगने का हुनर
उस्तादों से सीख!

000

बस थोड़ी-सी ओट हो
दफ्तर थाना कोर्ट हो
लपक लेता नोट को
नेता देता साथ
देख रहे तुम हर जगह
भीख मांगते हाथ!

000

नहीं किसी का यार वो
हर दम है तैयार वो
हमने देखी है मियॉ
आंख में उगती ईख
अफसर कैसे मांगता
आंख दिखा कर भीख।

■ **भगवान दास ऐजाज़**
टी–451, बलजीत नगर,
नई दिल्ली–110008

- मन में संतोष होना स्वर्ग की प्राप्ति से भी बढ़कर है। संतोष ही सबसे बड़ा सुख है। संतोष यदि मन में भली-भांति प्रतिष्ठित हो जाए तो उससे बढ़कर संसार में कुछ भी नहीं है। **वेदव्यास**

- अधिक धन-संपन्न होने पर भी जो असंतुष्ट रहता है, वह निर्धन है। धन से रहित होने पर भी जो संतुष्ट है, वह सदा धनी है। **अश्वघोष**

- जो प्राप्त वस्तु के लिए चिंता नहीं करता और प्राप्त वस्तु के लिए सम रहता है, वह संतुष्ट कहा जा सकता है। **महोपनिषद्**

संस्कृति : व्यक्ति और समाज

• तुलसी जैन •

काल के अनंत प्रवाह एवं सभ्यताओं के विवर्तन के बीच धरापृष्ठ पर हमारा अवतरण हुआ है। जन्म-जन्मांतर के संचित संस्कार एवं स्वयं के जीन को लेकर हमारा स्वतंत्र व्यक्तित्व का निर्माण होता है। लेकिन व्यक्तित्व का रूपांतरण या परिशोधन का उपक्रम युगों से होता आया है। त्रेता के राम ऐसे मनुष्य से, जो निरंतर देवत्व प्राप्ति के लिये प्रयास करते रहे। लेकिन द्वापर के कृषण ने देव से मानव बनने का सलक्ष्य प्रयत्न किया। किसी को भी निम्न गति नहीं कही जा सकती। युगीन आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर इन्होंने अपने-अपने गति पथ का निर्धारण किया था। तो अब हमें सोचना है कि मनुष्य जन्म प्राप्त कर, मनुष्य की तरह जी कर पुनः मनुष्य जन्म प्राप्त करने की प्रचेष्टा हमारे वर्तमान को सार्थक कर देंगे। मोक्ष या देवत्व प्राप्ति के बिना भी समाज को स्वस्थ और संस्कृति को समृद्ध बनाया जा सकता है।

भारत मां की गोद में जन्म लेना हमारा सौभाग्य है। कारण जगद्गुरु हमारी संस्कृति। धर्म हमारा सनातन व शाश्वत। गौरवशाली परंपरा एवं पूर्वजों की साधना व सिद्धि हमारी जमा पूंजी है।

यहां पितृवाक्य को सत्यार्पित करने के लिए पुत्र राजमुकुट का परित्याग कर सकता है। राजप्रसाद के सुख-ऐश्वर्य को छोड़ चौदह वर्षों के लिए अरण्य वास कर दुःखों का सादर स्वागत करता है।

बिना किसी के आदेश, केवल कर्त्तव्य के आह्वान पर भाई, बड़े भाई के साथ वनगमन करता है एवं जितेन्द्रिय होकर निर्विकार चित्त से भ्रातृसेवा करता है।

एक अन्य भाई, माता के षड़यंत्र से प्राप्त राजतिलक का प्रत्याख्यान कर अग्रज के चरण पादुका को सिंहासन स्थित कर चौदह वर्षों तक नंदीग्राम में यती का जीवन यापन कर सकता है।

यहां पत्नी अपनी सतीत्व की पराकाष्ठा दिखाने अग्नि-स्नान करती है। पिता की कामना को तृप्त करने के लिए पुत्र आजन्म ब्रह्मचर्य स्वीकार कर सकता है।

द्विपाक्षिक युद्ध होने पर हम पांच और कौरव सौ किंतु बाह्य शत्रु आक्रमण करने पर हम होते हैं एक सौ पांच यह बात केवल भारतीय युधिष्ठिर कह सकते हैं।

सत्य रक्षा खातिर स्वयं को तथा पत्नी और पुत्र को बाजार में विक्रय कर दासत्व का वरण किया था महाराज हरीश्चन्द्र ने।

इसी संस्कृति में कठोर साधना कर वर्द्धमान महावीर बनते हैं एवं अहिंसा को कालजयी बना देते हैं। राजकुमार गौतम, बुद्ध में परिणत हो जाते हैं।

राजनीति विशारद एवं अर्थशास्त्र के जनक महामान्य चाणक्य स्वयं जीकर व्यक्तिगत एवं सार्वजनीन सम्पत्ति में स्पष्ट भेद बता गये हैं। स्वयं फटी हुई चादर से काम चला लेते हैं, जबकि उनकी कुटिया के सामने हजारों नये कम्बल प्रातः वितरित होने की प्रतिक्षा कर रहे होते हैं। ''राजा और मंत्री जनता के स्वामी नहीं सेवक हैं'' उक्ति को स्वयं पर लागू किया है।

यहां पर जननी अपने पुत्र (जो मांस के लोथड़े के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है एवं जिसमें चेतना के नाम पर केवल धक-धक करता हुआ स्पंदन मात्र है), को जीवित रखने का तीव्र प्रयत्न करती है। उसका स्नेह से लालन-पालन करती है। आज गर्भस्थ भ्रूण को कन्या जान ममतामयी मां को हत्यारन देख हृदय रक्ताक्त हो जाता है।

पांच पुरुषों की शैय्या-संगिनी होकर भी नारी पूजनीया व प्रातः स्मरणीया हो सकती है यही हमारी संस्कृति की वैशिष्टय है।

आज जब रिश्ते या सम्बद्ध व्यवसायिक और औपचारिक बन रहे हैं गुरु-शिष्य संबंधों में प्रगाढता यहां आज भी विद्यमान है। द्रोण-अर्जुन, रामकृष्ण-विवेकानंद, तुलसी-महाप्रज्ञ आदि का विनय और वात्सल्य की हिलोरों से केवल तन-मन ही नहीं आत्मा तक भीग जाती है।

यहां वृक्ष, लता, खेत, जंगल, अग्नि, जल और पत्थर तक भी पूजे जाते हैं। हमारी संस्कृति गुणों को देखती है, दोष दुर्बलताओं को नहीं।

'आत्मवत सर्व भूतेषु' हमारी उदात्त सांस्कृतिक चेतना का प्रतिबिम्ब है।

अंग्रेज सरकार के कभी अस्त न होने वाले सूर्य को पश्चिम दिग्वलय तक पहुंचाने में सफल हुए हैं महात्मा गांधी। साध्य कितना ही महान हो पर साधन यदि शुद्ध नहीं है, तो उस परम लक्ष्य को उन्होंने बड़ी निर्ममता से अस्वीकार कर दिया था। परतंत्रता मान्य है, पर विवेक की हत्या कर हिंसात्मक मार्ग से प्राप्त स्वराज्य की संभावना को उन्होंने अग्राह्य कर दिया।

अन्य संस्कृतियों में शत्रु के साथ मित्रता की शिक्षा दी जाती है तो हमारी संस्कृति में किसी को शत्रु मानने को ही अपराध घोषित किया है। जड़ और चेतन सभी हमारे मित्र हैं।

यहां भोगे जा रहे दुःखों के लिए दूसरों पर दोष नहीं दिया जाता। स्वयं के कर्मों का विश्लेषण कर कष्टों के कारण खोजा जाता है। विशाल सम्पत्ति और

परिपूर्ण भोगों का परित्याग कर भारतीय मनीषा ने सदैव आत्मा का अन्वेषण किया है। स्वामी विवेकानंद पर हमें गर्व है, जिन्होंने भोग के शिखर पर पहुंची पाश्चात्य सभ्यता को त्याग और धर्म का दिव्य आलोक दिखाया।

आचार्य महाप्रज्ञ ने आवश्यक हिंसा और अनावश्यक हिंसा के रूप में हिंसा को दो भागों में वर्गीकृत किया है। आवश्यक हिंसा करने के लिए मनुष्य विवश है पर अनावश्यक हिंसा को उन्होंने सर्वथा त्याज्य बताया है। त्याग को समग्रता से स्वीकार करने में हमारा सामर्थ्य सीमित है। किंतु भोगोपभोग की सीमाकरण तो हम कर ही सकते हैं।

इस प्रकार से हमारी संस्कृति के शुक्ल पक्ष के अनगिनत उदाहरण हमारी हवा, पानी, मिट्टी में बिखरे पड़े हैं। किंतु आज हमारे जीवन के मूल्यबोध में जो अकाल देखने को मिल रहा है, उससे हमें गहरी निराशा होती है। 'मूल्य' के आसन पर 'कीमत' आरूढ़ है। जीवन के बदले आजीविका को प्राधान्य मिल रहा है। मानवीय संबंध तो दूर की बात है, आज पारिवारिक संबंध तक जर्जर हो चुके हैं। आत्मीयता, औपचारिकताओं की भीड़ में खो गई है। संयुक्त परिवार की व्याप्तता, आज मैं, मेरी और मेरे में सिमट गई है। सृजनात्मक-शून्यता और संवेदन-हीनता पसर रही है। जिन मूल्यमानकों को व्यक्ति अपने जीवन में उतार कर समाज में प्रतिष्ठित करने की जरूरत है, उन्हें उपेक्षा का शिकार होते देख आत्मा हमारी आहत है। पश्चिमी जगत शांति के लिये हमारी और आशायित नयनों से निहार रही है, किंतु यह कैसा दुर्भाग्य कि हमारी सोच का सम्पूर्ण पाश्चात्यकरण हो चुका है।

हमारी युवा पीढ़ी डिस्को वार, क्लब और पव में अपनी शक्ति को बहा रही है। रॉक एंड रॉल की कर्णकटु संगीत, रेप का मतुआला धुन, शराब और कबाब के तीव्र स्वाद में आकंठ डूब कर 'चार्वाक' को अमर बनाने में जी-जान से जुटे हुए हैं। भारतीय दीपक और मल्हार राग आज बेजान हो चुके हैं। हमारी आम्रपाली, रूपकोशा और चित्रलेखा, विपाशा, मेघना और राखी सावंत के सामने बेचारी बन चुकी है। बड़े और छोटे पर्दे से ऐसे दृश्य परोसे जा रहे हैं, जिसे देखकर विकृत यौन उत्तेजना से समाज रुग्ण हो रहा है। ऐसी कामकेन्द्रिक संरचना के साथ हिंसा का तांडव विचित्र कॉकटेल की सृष्टि कर रही है। लगता है हमारी आर्य संस्कृति अपनी आदिम दौर की और प्रत्यावर्तन कर रही है। दो, तीन सौ वर्ष की तथाकथित पाश्चात्मय संस्कृति, हमारी जगदगुरु संस्कृति को तिनके की तरह बहा कर ले जा रही है। हम असहाय हो कर चुपचाप देख रहे हैं। केवल भाषा और साहित्य पर नहीं, हमारे जीवन पर भी गंभीर आघात पहुंचाया जा रहा है।

वर्तमान में हमारी जीवन शैली पर काम और अर्थ का गहन प्रभाव परिलक्षित हो रहा है। धर्म और मोक्ष गौण हो चुके हैं। समाज में स्वार्थ और अहं का एकछत्र साम्राज्य दिखाई दे रहा है। सामाजिक जागरूकता और समाजवादी व्यवस्थाओं ने व्यक्ति को सामाजिक नहीं स्वार्थी बना दिया। अर्थ की प्रधानता ने करणीय अरकणीय की सभी वर्जनाओं को तोड़ कर रख दिया है। क्रूरता बढ़ रही है। समर्थ, असमर्थ का शोषण कर रहे हैं।

ऐसी विषम परिस्थिति में ईश्वर के अस्तित्व के प्रति भी प्रबुद्ध मानस के मन में शंका हो रही है। हम शांति से रहें, औरों को भी शांति से रहने दें तथा ''जीओ और जीने दो'' की भावना को विकसित होने पर ही अहिंसा जीवन में फलित हो सकेगी। व्यक्ति का दृष्टिकोण परिणामदर्शी नहीं होने तक समाज और राष्ट्र को दुःख भोगना ही पड़ेगा। स्वयं के विचारों को श्रेष्ठ प्रमाणित करने की अदम्य लालसा एवं अन्य के विचारों के प्रति असहनशीलता, समाज को स्वस्थ नहीं रहने देते। वर्तमान जीवन से कौन कितना पाया, कितना खोया यह बात बेमानी है। कारण जीवन के अंत के साथ हिसाब-किताब का भी अंत होता हैं किंतु जो इस प्राप्ति और अप्राप्ति के बीच कुछ देने का सामर्थ्य रखता है, स्वयं दीप की तरह जल कर समाज को आलोकित करता है, वही मृत्यु के बाद भी आदर्श और अनुकरणीय बना रहता है। अन्य को बौना सिद्ध करने की कुचेष्टा न कर स्वयं की उच्चता बढ़ाने की उदात्त भावना से संस्कृति चिरंजीवी बनती है।

आवश्यकता है व्यक्ति श्रुत के साथ शीलसम्पन्न भी बनें। अर्थात् ज्ञान और चरित्र के समन्वय से व्यक्ति परिपूर्ण बनता है। जो एक से भी रिक्त हैं वह समस्या का समाधान नहीं दे पाएगा। दोनों से जो शून्य है, वह समाधान नहीं, नई समस्याएं सृष्टि करता है। जीवन यापन का स्तर के स्थान पर जीवन का स्तर प्रतिष्ठित कर पायें, तो हम मधुमय विश्व की परिकल्पना कर सकते हैं।

अब केवल वाचिक उपदेश से काम होने वाला नहीं है। शुरुआत करनी होगी। हम जिस मोड़ पर खड़े हैं, वहां विवेक और विकास में, श्रद्धा और तर्क में तथा सिद्धांत और संस्कृति में संघर्ष की स्थिति यदाकदा आ ही जाती है। हमारी दृष्टि सम्यक् हो, विचार सकारात्मक हो। इसमें किंतु परंतु नहीं चलेगा। पुरुषार्थ को जगा कर हम अपने स्वयं के भाग्य का निर्माण कर सकते हैं। संकल्पित मन, विश्वास और साहस हमारी पूंजी हैं।

व्यक्ति से समाज और समाज से संस्कृति की गति-प्रगति, सुविधा से सुख और सुख से शांति के लक्ष्य पर पहुंच कृत कृत्य होती है। अस्ताचलगामी सूर्य की वेदना को लाघव करने के लिये हम छोटा-सा दीप बनकर भी जल पायें तो हमारा जीवन सार्थक होगा। समाज सुंदर और स्वस्थ होगा, सभ्यता चिरायु और संस्कृति की आभा शतगुणित होकर उभरेगी।

अध्यक्ष : विधुभूषण साहित्य संसद
पोस्ट तुषरा 767030
जिला–बलांगीर (उडीसा)

सह-अस्तित्व पर सांस्कृतिक संकट

• जसविंदर शर्मा •

अभी कुछ दिन पहले इस बात को लेकर प्रदर्शन हुए कि गलियों के आवारा कुत्तों को भी जीने का हक है। म्यूनिसिपल कमेटी वाले इन आवारा कुत्तों को बेरहमी से पकड़कर ले जाते हैं और निर्दयतापूर्वक उन्हें जहर वाली रोटियां खिलाकर मार देते हैं। यह बात कई समाजसेवी संस्थाओं को बहुत नागवार गुजरी। उन्होंने एकजुट होकर इस बात के खिलाफ बाजारों में प्रदर्शन किया। प्रेस में इस बारे में बड़े उत्तेजक संपादकीय टिप्पणियां छपी। मामला संसद तक जा पहुंचा। जानवरों के प्रति निर्दयता रोकने वाली संस्थाओं ने नागरिकों से अपील की कि वे गलियों के आवारा कुत्तों को भी अपनाएं, उन्हें भोजन दें क्योंकि मानवीय पहलू के अलावा एक दूसरा फायदा यह है कि ये आवारा कुत्ते चोरों को आवासीय कॉलोनियों में घुसने नहीं देते।

आवारा कुत्तों के साथ-साथ शहरों में स्लम बस्तियों के गरीब लोगों से आम नागरिकों जैसा व्यवहार करने की बात पर भी काफी बहस चल रही है। इन लोगों को भी सामान्य शहरी सुविधाएं देने के बारे में वकालत की जा रही है। चीन के महानगर शंघाई में स्लम बनने ही नहीं दिए जाते। वहां जिन लोगों के पास शहरी नागरिक होने का परमिट नहीं है, उन्हें शंघाई में रहने नहीं दिया जाता। भारत में स्लम बस्तियों को राजनैतिक संरक्षण प्राप्त है क्योंकि यहां के गरीब निवासी राजनैतिक दलों के सशक्त वोट बैंक हैं। या तो इन्हें इस तरह पनपने न दिया जाए और अगर शहरी टाउन-प्लानिंग इनका बोझ नहीं उठा सकती तो इन्हें ठीक से पुनर्वास करने के कदम उठाए जाएं। दिल्ली, मुंबई, चेन्नई और कोलकाता के साथ-साथ अन्य बड़े महानगरों में स्पेशल स्लम जोन बना दिए जाएं तो इन मलिन बस्तियों के वाशिन्दों को उनके नारकीय जीवन से मुक्ति मिल सकती है।

जिस तरह गांवों की जमीन को अधिग्रहण करके उन पर विशेष आर्थिक जोन एस.ई.जेड़ धड़ाधड़ बनाए जा रहे हैं वैसे ही महानगरों में गरीबी रेखा के नीचे रहने वाले लोगों के लिए खास स्लम जोन बनाने के बारे में भी सरकार को सोचना चाहिए। अकेले मुम्बई की एक करोड़ 20 लाख आबादी में से 75 लाख लोग झोंपड़-पट्टियों में रहते हैं। दिल्ली की सीलिंग अभियान के दौरान लाखों नाजायज दुकानों को तोड़ा गया। इस अभियान के दौरान शहरी विकास मंत्री जयपाल रेड्डी ने कहा था कि यदि करोड़ों लोग कानून के समक्ष गलत रास्ते की तरफ हैं तो फिर इसमें कोई दो राय नहीं कि ऐसे कानून में ही कमी है। इतनी ज्यादा संख्या में लोग गलत हैं तो कानून में बदलाव लाना चाहिए।

शहरों को प्रदूषण से बचाने में विशेष स्लम जोन बनाने के साथ-साथ पर्यावरणविद् एक नई चिंता के शिकार नजर आ रहे हैं। अभी-अभी पर्यावरण दिवस के अवसर इन लोगों ने मानव जाति के अस्तित्व पर आने वाले खतरों के प्रति काफी सिर धुना। ऐसे मौके पर हर साल ऐसी ही कुछ सनसनीखेज बातें कहकर पल्ला आसानी से झाड़ लिया जाता है। वैज्ञानिकों का मत है कि जिस हिसाब से ग्लोबल वार्मिंग बढ़ रही है उस हिसाब से पर्यावरण को बचाने के लिए हमारे पास सिर्फ आठ साल ही बचे हैं।

एक अनुमान के अनुसार सन् 2015 तक नहीं तो भी सन् 2100 तक कयामत आ ही जाएगी। सबसे पहले खत्म होने वाले जीवों में आदमी ही होगा क्योंकि वह अब सबसे नाजुक मिजाज प्राणी हो गया है। हर तरफ सुख-सुविधाओं का अंबार लगाकर उसने अपने स्वास्थ्य से तो खिलवाड़ कर ही लिया है, पर्यावरण तो फिर बाहरी चीज है। बाकी प्राणी तो लुप्त होने के कगार पर हैं मगर मनुष्य की विश्व में आबादी 600 करोड़ से ज्यादा हो गई है। अपनी बरबादी का सामान आदमी खुद ही जमा करता जा रहा है।

सन् 2100 में स्थिति कुछ इस प्रकार होगी कि एक अंधेरी-सी गुफा से एक बंदर बाहर निकलकर अंगड़ाई लेते हुए कहेगा, 'अब फिर सब कुछ नए सिरे से शुरू करना पड़ेगा।' यह अतिश्योक्ति हो सकती है मगर यह सच है कि आज आदमी के अस्तित्व को सबसे ज्यादा खतरा है। बंदर को आदमी बनने में करोड़ों साल लगे मगर इन सौ सालों में आदमी बंदर तो नहीं बनेगा मगर आदमी इस सदी के अंत तक बचेगा भी नहीं।

मनुष्य और वन्य जीवों के बीच कड़े संघर्ष की स्थिति बनने लगी है। जंगल कट चुके हैं। तेंदुए जैसे हिंसक जानवर जंगल छोड़कर मानव बस्तियों में आने लगे हैं। अकेले राजधानी दिल्ली में 6000 बंदर बताए जाते हैं। ये बंदर प्रायः घरों व दफ्तरों में घुस आते हैं। उनके कारण रेबीज, टीबी, हेपीटाइटिस-बी, हर्पीस जैसी बीमारियां फैलती हैं। इसीलिए इन बंदरों को शहर से बाहर करने का मामला अदालत तक जा पहुंचा। अदालत ने आदेश दिया कि फौरन इन नटखट बंदरों को शहरों से बाहर कर दिया जाए। सवाल यह उठ खड़ा हुआ कि जगह कहां है? मध्य प्रदेश के जंगलों की तरफ ध्यान गया। मध्य प्रदेश सरकार ने भी 300 बंदर लेने के बाद हाथ खड़े कर दिए।

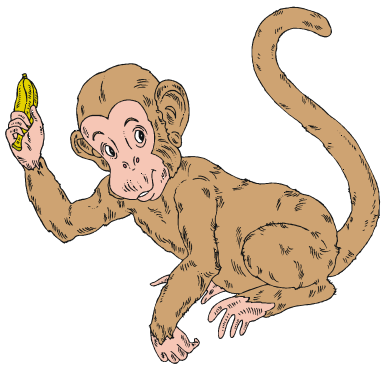

बंदरों का आतंक अब सर्वत्र है। जहां-जहां मंदिर हैं, तीर्थ यात्री वहां सहज रूप से नहीं जा सकते। ऐसी स्थिति आई ही क्यों? आदमी ने अपनी सुख-सुविधा के लिए बंदरों की जमीन छीनी, पेड़ छीने, जंगल छीने और अब वे उन्हें कहीं और खदेड़ना चाहते हैं। आप उनके पेट पर लात लगाएंगे, उनकी बस्तियां उजाड़ेंगे तो वे कहां जाएंगे? फिर चाहे वे बंदर हो या तेंदुए, ये मानव बस्तियों में घुसेंगे ही। आज बंदर न केवल शहरों में घुस रहे हैं बल्कि बिना किसी हिंसा के मनुष्य के साथ सह-अस्तित्व के साथ रहना सीख रहे हैं। वे शहरी जीवन के आदी हो रहे हैं। अब हो सकता है कि वे जंगलों में रह ही न पाएं।

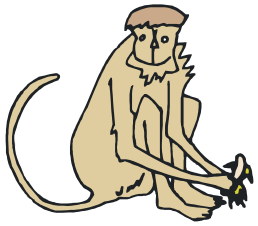

मध्य प्रदेश में यही हुआ। इन बंदरों को जंगलों में छोड़ दिया गया मगर जल्दी ही वे मानव बस्तियों की तरफ लौट आए। कुछ लोगों ने सुझाव दिया कि इन्हें बधिया कर दिया जाए। कुछ स्थानों पर बंदरों को भगाने के लिए लंगूरों की सेवाएं ली गई। यह अस्थायी समाधान है जो नई समस्याओं को जन्म देता है। इससे तो अच्छा था कि वन्य प्राणी जंगलों में ही रहते और हम अपनी बस्तियों में। दोनों अपनी-अपनी हदों में रहते तो अच्छा था।

5/2–डी, रेल विहार, मंसादेवी, पंचकुला 134109 (हरियाणा)

भारतीय संस्कृति के अंग, राजस्थान के रंग

(.....पृष्ठ 8 का शेष)

जोधपुर दुर्ग तथा जालौर दुर्ग अपनी ऐतिहासिक और युद्धकालीन यात्राओं के परिचायक हैं। खेतड़ी नगर के बाघौरगढ़ एवं भोपालगढ़ भी प्राचीन दुर्ग हैं।

राजस्थान विभिन्न कलाओं का आगार है। भारतीय संस्कृति के सभी अंगों एवं रूपों में राजस्थानी संस्कृति का समावेश महत्त्वपूर्ण रहा है। कभी रेगिस्तान में सांस्कृतिक चेतना के प्रादुर्भाव से राजस्थानी लोक जीवन रसपूर्ण था और बीकानेर इलाके में सरस्वती नदी पूरे वेग के साथ प्रवाहित थी जिसके तट पर ऋग्वेद की ऋचाओं की सृष्टि हुई। मोहनजोदड़ो एवं हड़प्पा की प्राचीन संस्कृति नदी के काठा पर विकसित हुई ललित कलाओं, लोकगीत, नृत्य, संगीत, तीज-त्यौहार, मेलों और साहित्य की कृतियों ने राजस्थान की सांस्कृतिक धरोहर को अक्षुण्ण बनाए रखा है।

भारतीय कलाओं के कई भेद हैं जिनमें ललित कलाओं, संगीत, नृत्य एवं चित्रकला को श्रेष्ठ माना गया है। राजस्थान में इन तीनों कलाओं का विस्तार द्रुत गति से हुआ। लोकनृत्यों में घूमर, गीदड़, धोरी और आदिवासी नृत्यों ने राजस्थान को नृत्य कला में समृद्ध बनाया। राजस्थान में संगीतकला के भी प्रकांड पंडित हुए और संगीत ग्रंथों के प्रणेता भी। 'लोकख्याल', 'तमाशा' की लोक गायकी और डागर की ध्रुपद शैली की रक्षा का श्रेय भी राजस्थान को ही है। आधुनिक चित्रकला एवं नवीनतम चित्रकला की शैलियां भी राजस्थान में पनपी और यहां के धनाढ्य व्यक्तियों ने प्राकृतिक रंगों के अभाव में चित्रकला को अपनी हवेलियों के भीतर बाहर टेम्परा तकनीक की तरह उतार लिया है।

मूर्तिकला, लाख कला, मीनाकारी, शस्त्रादि और अन्य कलाओं में भी राजस्थान के रंग उभरे हैं। दस्तकारी इस प्रदेश का परिचय है। रंगाई, छपाई, बंधेज आदि के क्षेत्रों में भी राजस्थान देश में अगुवा प्रदेश रहा है। राजस्थान में परम्परागत संस्कारों, लोक रीति-रिवाजों और प्रचलित जीवन शैलियों के भी रंग उकेरे गये हैं।

254, पद्मावती कॉलोनी–ए, अजमेर रोड़ जयपुर 302019 (राजस्थान)

अणुव्रत पाक्षिक के संस्थापक संपादक : देवेन्द्र कुमार कर्णावट

जन्म : 7 मई 1924 ● महाप्रयाण : 7 सितंबर 2007

स्वतंत्रता सेनानी

समाज भूषण

अणुव्रत महारथी

देवेन्द्र कर्णावट की स्मृति

द्वितीय पुण्य-तिथि : 7 सितम्बर 2009

कर्णावट परिवार
गांधी सेवा सदन राजसमंद
अणुव्रत महासमिति नई दिल्ली

भारतीय संस्कृति में सरस्वती

• डॉ. सरोज कुमार वर्मा •

भारतीय संस्कृति के आदि ग्रंथ वेद से सरस्वती का उल्लेख मिलना शुरू हो जाता है। ऋग्वेद में सरस्वती का उल्लेख नदी के रूप में मिलता है। नदी गति का प्रतीक है। वैसी गति जो सागर से मिलने को बेचैन है। सागर विराट का प्रतीक है। इस प्रकार नदी क्षुद्र का विराट से मिलने के प्रयास का प्रतीक है। सरस्वती को नदी के रूप में स्वीकार करने का अर्थ यही है कि मनुष्य भी ससीम प्राणी है जो सद्गुणों और शुभ प्रवृत्तियों को अपनाकर असीम ईश्वरत्व को प्राप्त कर सकता है। ऋग्वेद में इसकी चर्चा है कि इस नदी के तट पर यज्ञ किये जाते थे और ब्राह्मण ग्रंथों के अनुसार मनुष्य इस नदी में स्नान करके सभी प्रकार के पापों से मुक्त हो जाता था। एलोरा के कैलाश नाथ मंदिर में मकरवाहिनी गंगा और कच्छपवाहिनी यमुना के साथ कमल पर स्थित सरस्वती के इस नदी रूप का चित्रण किया गया है।

बाद के दिनों में नदी-स्वरूपा सरस्वती को नारी-रूपा देवी के रूप में मान्यता मिल गयी और इन्हें ज्ञान, विद्या, नृत्य और संगीत आदि कलाओं की अधिष्ठात्री के रूप में उत्तरवैदिक काल से जाना जाने लगा। भारती, शारदा, वाक्, वागेश्वरी, वाग्देवी तथा वीणा, पाणि आदि नाम इनके लिये प्रयोग में आने लगे। महाभारत में भी सरस्वती के जिस रूप का वर्जन है, वह गौर वर्ण वाली, हाथ में वीणा, पुस्तक और अदामाल लिये उजले कमल पर आसीन है। पुराण-युग में भी सरस्वती इसी युग में स्वीकृत हैं। विष्णु धर्मोत्तर पुराण में सरस्वती के स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा गया है कि ये चार भुजाओं वाली हैं, जिनमें वीणा, पुस्तक, कमंडल और अक्षमाल है। मत्स्य पुराण में सरस्वती का उल्लेख ब्रह्मा की शक्ति के रूप में किया गया है और इन्हें ब्रह्मा की बांयी और स्थापित करने का निर्देश दिया गया है। पुराणों में इस बात की भी चर्चा है कि सरस्वती का संबंध विष्णु से भी है। ब्रह्म-वैवर्त पुराण तथा भागवत पुराण में सरस्वती को विष्णु की शक्ति बतलाया गया है। पाले युग की कई प्रतिभाएं पूर्वी भारत में मिली हैं, जिनमें लक्ष्मी और सरस्वती दोनों विष्णु की दोनों ओर अवस्थित हैं। फिर पुराण में सरस्वती का संबंध शंकर से भी बतलाया गया है। स्कन्द पुराण में सरस्वती की चर्चा शिव की शक्ति के रूप में की गई है और यह कहा गया है कि कमल पर बैठी सरस्वती तीन आंखों वाली तथा नीली गर्दन वाली हैं एवं जटा-मुकुट के साथ-साथ मस्तक पर आधा चंद्रमा भी धारण करती हैं। इस प्रकार पुराणों के अनुसार सरस्वती ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीनों से संबंधित हैं और संभवतः इन तीनों से संबंधित रहने वाली देवी सरस्वती अकेली हैं।

बौद्ध और जैन धर्मों में भी सरस्वती को ज्ञान और विद्या की देवी के रूप में स्वीकारा गया है। बौद्ध धर्म में इन्हें ज्ञान के देवता मंजूश्री की शक्ति बताया गया है तथा महासरस्वती, आर्य सरस्वती, वज्र सरस्वती, वज्र शारदा एवं वज्र वीणा आदि इनके कई रूपों की चर्चा की गयी है। जैन धर्म में भी इनके बारह रूपों का उल्लेख किया गया है जिनके नाम महासरस्वती महाविद्या, महालक्ष्मी, महावाणी तथा महाकाली आदि हैं। इस प्रकार सरस्वती वह अकेली देवी हैं, जिन्हें हिन्दू, बौद्ध और जैन तीनों धर्मों में एक समान स्वीकारा गया है।

भारतीय धर्म और साहित्य के अतिरिक्त भारतीय कला में भी सरस्वती का स्थान केन्द्रीय है। इसलिये सरस्वती भारतीय कलाकारों की भी आराध्य देवी रही हैं। यही कारण है कि इन लोगों ने सरस्वती को नृत्य, स्थानक और आसन मुद्रा में चित्रित किया है। ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी में मरटूप के स्तूप की वेदी पर जो संभवतः सबसे पुराना अंकित रूप मिलता है, उसमें सरस्वती दो भुजाओं वाली हैं, जिनकी एक भुजा में वीणा है और वे कमल पर खड़ी हैं। फिर मथुरा के कंकाली टीला से सरस्वती की कुषाण काल की अभिलिखित प्रतिभा प्राप्त हुई है। और पूर्व मध्य युग की जो प्रतिभाएं नालंदा, बेलूर, दिलवाड़ा, हलेविड, तंजौर, ओसिया, भुवनेश्वर, हिंगलाजागढ़ तथा खजुराहो आदि से प्राप्त हुई हैं, उनसे यह प्रमाणित होता है कि इस काल तक सरस्वती सारे भारत में स्वीकृत हो चुकी थी और नर्तकों तथा संगीतज्ञों की आराध्य देवी के रूप में पूजी जाने लगी थीं।

सरस्वती भारतीय संस्कृति के मूल में स्थित हैं और इनकी पूजा-अर्चना आदि काल से होती आ रही है। आज सरस्वती की प्रासंगिकता और अधिक बढ़ गयी है। क्योंकि कभी दुनिया को ज्ञान का प्रकाश देने वाला भारत खुद अज्ञान के अंधकार में घिर गया है। यह अंधेरा दूर हो सकता है यदि सरस्वती जिन शुभ प्रवृत्तियों और सद्गुणों की प्रतीक हैं, उन्हें समझ कर उन पर अमल किया जाये, उन्हें जीवन में उतारा जाये।

6, लेक्चरर्स क्वार्टर, खबड़ा रोड़,
विश्वविद्यालय परिसर,
मुजफ्फरपुर 842001 (बिहार)

देह-सज्जा या निर्लज्जता?

• स्वामी वाहिद काज़मी •

दोस्तो! इस समय सवाल मौजूदा नारियों की वस्त्र-सज्जा अर्थात् लिबास या परिधान का नहीं, पूरी रूप-सज्जा, देह-सज्जा का है! लिबास, पहनावे या परिधान का क्या! वह तो बदलता रहता है और बदलने के साथ-साथ उसकी शान व महत्त्व भी घटता-बढ़ता रहता है। थोड़े अर्सा पूर्व तक एक हवा यानी फैशन यह चला था कि मॉडर्न युवतियां एक फ्रॉकनुमा लिबास पहनती थीं। उन्हें क्या पता कि वह पिशवाज़ या पेशवाज़ का मॉडर्न रूप था! पुराने समय में तवायफें तथा वेश्याएं गाते-नाचते समय पेशवाज़ ही पहनती थीं। (रेखा अभिनीत 'उमरावजान' और मीना कुमारी अभिनीत 'पाकीज़ा' में दोनों ने मुजरे के समय पेशवाज़ ही पहनीं थीं) अब यह जो आजकल बिल्कुल चुस्त पाजामों में जवान लड़कियां अपनी चिकनी पिंडलियों की मांसलता दर्शाती नज़र आती हैं। मेरे बचपन में इतने चुस्त पाजामें निम्न श्रेणीय औरतों (रंगरेज़न, कुंजड़न आदि) की पहचान थे। कोई कुलीन स्त्री कभी नहीं पहनती थी! आज जो इतना झीना लिबास पहनने का आधुनिक चलन है कि भीतर की ब्रेज़री क्या मानी, वक्ष की मांसल गोराई भी अपनी झलक दिखाती चले! यह भी निम्नश्रेणीय स्त्रियों में ही चलन था! तब भी कम से कम इतना तो था कि कपड़े के भीतर से बदन का गोरापन नहीं झलकाया जाता था। यहां मुझे अनायास एक प्रख्यात अमेरिकन सिने-अभिनेत्री स्वॉर्लेट जॉन्सन के शब्द याद आते हैं 'मैं हमेशा यह निश्चित करने के लिए दर्पण में जांच करती हूं कि कुछ अंदर का दिखाई तो नहीं दे रहा।' चेहरे पर बिखरी मासूमियत का सजीला आवरण, भोलेपन का स्वांग शोभित। किंतु दुपट्टे का पल्ला कंधे से ढलका यदि एड़ी चूमता न चले तो बात ही क्या! दुपट्टा तो सिर्फ गर्दन में लपेटने के लिए होता है। शरीर ढंकने के लिए थोड़े ही होता है!

यह जो नवयुवा लड़कियां बाज़ारों में जीन्स और सिर्फ कमर तक शॉर्ट्स पहने जवानी की अदाएं दिखाती, इतराती, इठलाती ठी-ठी, खी-खी, खिलखिलाती, हाथों में हाथ दिए चटक-मटक दर्शाती, कान से चिपके मोबाइल पर गप्पियाती। इन तमाम खूबियों के लिए अगर पुरानी भाषा का एक शब्द प्रयोग करूं तो मस्ताती (हुदराती) नज़र आ रही हैं। कभी गौर से उन पर दृष्टिपात कीजिएगा! फिर कहिएगा! आपके तर्क का मुझे पहले ही से अनुमान है! आप कहना चाहते हैं यह ठीक है कि पश्चिमी सभ्यता का प्रभाव विशेषकर शहरों में रहने वाली हमारी नयी पीढ़ी पर पड़ रहा है। पुरानी पीढ़ी के लोग इससे चिंतित भी हो सकते हैं। लेकिन पीढ़ियों की सोच में अंतर कोई नयी बात नहीं है। हर युग में दो पीढ़ियों की सोच में फर्क रहा है। यह अंतर उनकी जीवन शैली, खानपान और पहनावे में नज़र आता है तो इसमें अचरज या आपत्ति वाली क्या बात है!

चलिए बदन झलकाऊ लिबास को दरगुज़र कीजिए। ज़रा इनकी चाल-ढाल, अंग-संचालन और भाव-भंगिमाओं की भाषा पर ध्यान दीजिए जिसे कहते हैं बॉडी लैंगवेज। मनोविज्ञान विशेषज्ञ कभी का साबित कर चुके हैं कि जो भी हमारे सामने हो उसकी बॉडी लैंगवेज से हम 55 प्रतिशत प्रभावित होते हैं। आवाज की टोन, गति (स्पीड) और इंफलैक्शन से 38 प्रतिशत और बातों से सिर्फ 7 प्रतिशत प्रभाव लेते हैं। चलिए, लिबास को आग लगाइए और बॉडी लैंगवेज को भी भाड़ में झोंकिए। अब मुझ नासमझ को इतना तो समझा दीजिए कि जवान लड़कियों के टाइट लिबास फाड़कर उफने पड़ते यौवन के उभारों पर बड़े-बड़े अक्षरों में छपे ऐसे शब्दों का क्या अर्थ है भला फायर, डीजल, वी गर्ल्ज़, पैट्रोल, डेंजर, वीऑल जूसी इत्यादि। चमकीले सलमा, सितारों, नगों, मोतियों की सजावट अगाड़ी-पिछाड़ी के इन्हीं उभारों पर ही क्यों होती है?

देखिए, प्लीज़ यह मत कहिए कि हे स्वामीजी! आप संन्यासी होकर भी क्यों इन लौंडियों तथा जनानियों के अंग-प्रत्यंग देखते फिरते हैं? अजी कोई दानिस्ता कहां देखता है! ये सब होते ही इतने बड़े-बड़े अक्षरों में हैं और ऐसे डिजाइनदार कि हर व्यक्ति की लामुहाला दृष्टि पड़े। अब कोई भी भीड़ भरी सड़कों पर आंखें मूंदकर तो चलने से रहा! दशकों पूर्व किसी शायर को भी ऐसी ही समस्या से पाला पड़ा था। तो उसने एक शेर में जवाब दिया था

मुझी से सब ये कहते हैं, कि रख नीची नज़र अपनी।
कोई उनसे नहीं कहता, न निकलो यूं अयां होकर।।

अब तो स्थिति इससे भी कई गुना आगे तरक्की कर चुकी है। लगे हाथ एक और राज़ भी खोलता चलूं। कोई बीस वर्ष पूर्व जब ध्यान का नया-नया चस्का लगा था। तो नासाग्र दृष्टि रखकर चलता था। फलतः भाई लोगों ने मुझे अंधा और जाने क्या-क्या कहना शुरू कर दिया था। सितम तो यह है जनाब, कि पहले तो मुए मरदुए ही औरतों को घूरने के लिए बदनाम थे। अब तो औरतें ही औरतों के अंग-प्रत्यंग घूरती नज़र आती हैं।

जान लीजिए कि मैं पर्दे और बुर्के का कायल नहीं हूं। मेरे परिवार में कभी किसी महिला ने बुर्का नहीं पहना। मगर मैं नारी की स्वाभाविक लाज-शर्म, संकोच का कायल अवश्य हूं। पहले इसे नारी की सज्जा-शोभा से लेकर उसका कुदरती जेवर भी माना जाता था। मगर अब पिछड़ापन माना जाता है। किंतु कुछ विचारशील दिल-दिमाग अब भी शर्म-हया को नारी का गहना मानते और उसे निरर्थक मान उतार

शेष पृष्ठ 27 पर...

जन्मदिन मनाने से पहले.....

• मुकेश अग्रवाल •

यदि निकट भविष्य में आप जन्मदिन मनाने की तैयारी कर रहे हों तो ठहरिये. ..... पहले ज़रा अपनी संस्कृति के बारे में विचार कर लें और फिर फैसला करें कि पाश्चात्य संस्कृति के अनुरूप जन्मदिन अथवा वैवाहिक वर्षगांठ मना कर कहीं आप भारतीय संस्कृति का अपमान तो नहीं कर रहे हैं?

सर्वविदित है कि भारतीय संस्कृति को समस्त जगत में अद्वितीय स्थान प्राप्त है। प्राचीन काल से ही भारतीय संस्कृति विश्व का मार्गदर्शन करती रही है। यही कारण है कि भारत में रहने वाला प्रत्येक व्यक्ति भारतीय संस्कृति का जिक्र आते ही गर्व से फूला नहीं समाता। समूचा विश्व जानता है कि श्रीकृष्ण-सुदामा जैसी मित्रता, हरिशचंद्र जैसा सत्यवादी राजा, राम-लक्ष्मण जैसे आज्ञाकारी पुत्र, एकलव्य-आरुणि जैसे गुरुभक्त शिष्य केवल भारतीय संस्कृति की ही देन हैं। किंतु दुःख की बात तो यह है कि दूसरों को सभ्यता और संस्कृति का पाठ पढ़ाने वाला देश भारत आज अपनी ही संस्कृति को भूलता जा रहा है। कहना गलत ना होगा कि पश्चिमी सभ्यता के बढ़ते दखल से एक ओर जहां भारतीय संस्कृति का ह्रास हो रहा है वहीं दूसरी ओर उसकी गरिमा का भी पतन हो रहा है। उदाहरणतयः भारतीय संस्कारों के अनुसार किसी व्यक्ति के जन्मदिन के दौरान पूजा-अर्चना, दान इत्यादि का विशेष महत्त्व है। किंतु हैरानी की बात है कि भारत में जिस प्रकार जन्मदिन एवं वैवाहिक वर्षगांठ समारोह के नाम पर अपने नैतिक मूल्यों का मखौल उड़ाया जाता है, ऐसी मिसाल किसी अन्य देश में देखने को नहीं मिलती। उल्लेखनीय है कि आजकल जन्मदिन और विवाह की सालगिरह जैसे समारोहों में केक काटने और मोमबत्तियां बुझाने का चलन दिनोंदिन जोर पकड़ता जा रहा है। अब तो जिसे देखो केक काटने को लालायित रहता है। किंतु क्या आपने कभी सोचा है कि इन बेसिर पैर की प्रथा का अर्थ क्या है? हैरानी की बात तो यह है कि हमने आंखों पर पट्टी बांधकर विदेशी रीति रिवाजों की नकल तो आरंभ कर दी किंतु कभी इन बेफिजूल के रिवाजों की प्रासंगिकता के बारे में जानने का प्रयास नहीं किया। कौन नहीं जानता कि मांसाहार विदेशी संस्कृति का एक अहम हिस्सा रहा है। खुशी का कोई भी अवसर हो विदेशी लोग मुर्गा, बकरा, मछली आदि जानवरों की बलि देकर अपनी रस्म पूरी करते हैं। देखादेखी भारत में भी इसका प्रचलन आरंभ हो गया। गौर करें तो पता चलेगा कि अंडों से बने केक को काटना भी विदेशियों द्वारा प्रचलित पशुबलि का ही एक रूप है। विचारणीय है कि जन्मदिन या अन्य शुभ अवसरों पर किसी वस्तु को काटना क्या हमारी संस्कृति से मेल खाता है? इतने पर भी आप सहमत ना हों तो फूंक मार कर मोमबत्ती बुझाने को आप क्या कहेंगे? अनादिकाल से ही भारतीय संस्कृति के अनुसार जलता दीपक शुचिता, ज्ञान, उन्नति का प्रतीक माना गया है। इसीलिए दीपावली, नवरात्र, पूजा अर्चना एवं अन्य शुभ मंगल अवसरों पर दीपक जलाने का प्रावधान है। जबकि इसके विपरीत दीपक को असमय बुझाना अज्ञानता एवं अपसंस्कृति के सिवाय कुछ नहीं है। यूं भी जलता हुआ दीपक अग्नि का दूसरा रूप माना जाता है। हमारे जीवन में अग्नि का क्या महत्त्व है इस विषय में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। इतना सब कुछ जानने के बाद भी जलते हुए दीपकों को बुझाकर जीवन मं प्रकाश की उम्मीद करना कहां की अक्लमंदी है?

बहरहाल, इतना तो तय है कि यदि हम अपनी संस्कृति को फलता-फूलते हुए देखना चाहते हैं तो हमें पाश्चात्य संस्कृति का सर्वथा त्याग करना होगा। अपनी निर्मल एवं पावन संस्कृति का त्याग करके विदेशी संस्कृति को गले लगाना किसी भी दृष्टिकोण से उचित नहीं है।

भारतीय संस्कृति के विकास के लिए सर्वप्रथम हमें अपनी परंपराओं के अनुसार समारोह मनाने की आदत डालनी होगी। उदाहरणतयः जन्मदिन आदि अवसर पर कथा अथवा छोटा-सा हवन कर संबंधित व्यक्ति के दीर्घायु होने की कामना करें। अपने-अपने धर्म के अनुसार मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारे में जाकर पूजा-अर्चना करना भी श्रेयस्कर होगा। सामर्थ्य अनुसार गरीब व्यक्तियों को भोजन करवा कर जन्मदिन जैसे महत्त्वपूर्ण अवसर को तर्कसंगत बनाया जा सकता है। मोमबत्तियां बुझाने के स्थान पर अधिकाधिक दीपक प्रज्वलित कर खुशहाली की कामना करें। अपनी संस्कृति के अनुरूप समारोह मनाकर जहां एक ओर संस्कृति की रक्षा होगी वहीं आत्मिक शांति की भी प्राप्ति होगी। साथ ही साथ मांसाहारी केक के स्थान पर शाकाहारी या फलाहार पदार्थों के सेवन से स्वास्थ्य लाभ और नैतिक मूल्यों की रक्षा एक साथ होगी।

पुराना डाकघर, साढौरा,
यमुनानगर – 133204 (हरियाणा)

स्वस्थ जीवन और मुद्रा संतुलन

• मुनि किशनलाल •

शरीर की कार्यशक्ति और इच्छा-शक्ति से मुद्राएं बनती है। शरीर पर भावनाओं की अभिव्यक्ति, आकृतियों के रूप में जो अभिव्यक्त होती है वह मुद्रा कहलाती हैं मुद्राओं से भी भाव व्यक्त किए जाते हैं।

जैसे भाव, वैसी ही मुद्रा बन जाती है और जैसी मुद्रा होती है, उस तरह की भावनाएं भी जाग्रत होती हैं। मुद्रा का एक अर्थ यह भी है कि उसे आप-हम अपनी आंखों से ही देखकर समझ सकते हैं। मुद्रा से ही मुद्रण बना है जिसका तात्पर्य है वर्णमाला के माध्यम से भावों, विचारों की अभिव्यक्ति करना। जिस प्रकार वर्णमाला द्वारा वर्णित अक्षरों के भावों के अर्थ निश्चित हैं, उसी तरह शरीर की मुद्राओं से मन के भावों का ज्ञान हो जाता है।

भाव परिवर्तन के लिए प्रेक्षा साधना में, मुद्राओं का महत्त्वपूर्ण स्थान है। नियमबद्ध मुद्राओं के प्रयोग और अभ्यास से संतुलित भावों का निर्माण किया जा सकता है। ये क्रमबद्ध भाव हमारे जीवन में इच्छित चरित्र को घटित करते हैं। यदि कोई व्यक्ति अपने जीवन में कुछ परिवर्तन चाहता है तो उसे 'नमस्कार मुद्रा' का अभ्यास करना चाहिए। नमस्कार मुद्रा के पांच वर्ण (रंग) हैं। अर्हं मुद्रा का श्वेत, सिद्ध मुद्रा का अरूण, आचार्य मुद्रा का पीला, उपाध्याय मुद्रा का हरा और मुनि मुद्रा का नीला रंग है। रंगों के साथ ध्यान करने से हमारा शरीर मन और भाव प्रभावित होते हैं।

नमस्कार मुद्राएं पांच प्रकार की होती हैं अर्हं मुद्रा, सिद्ध मुद्रा, आचार्य मुद्रा, उपाध्याय मुद्रा तथा मुनि मुद्रा।

मुद्राओं के प्रकार

प्रेक्षाध्यान में मुद्राओं का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इससे शक्ति और स्वास्थ्य का मनचाहा फल प्राप्त किया जा सकता है। इसीलिए कहा भी गया है

''नास्ति मुद्रा समं किंचत् संसिद्धये क्षितिमंडले''

इस पृथ्वी पर मुद्राओं के समान सिद्धि दिलाने वाला और कुछ भी नहीं है।

प्रत्येक मुद्रा को करने की अलग-अलग विधियां हैं। मुद्राओं को अलग-अलग आसनों में भी किया जा सकता है।

अर्हं मुद्रा

''ऊँ ह्रीं णमो अरहंताणं'' (मैं अरहन्तों को नमस्कार करता हूँ) का उच्चारण करें।

इस मुद्रा को कई आसनों में कर सकते हैं। पद्मासन, सुखासन, समपादासन (सीधे खड़ा रहना) आदि उपयोगी आसन हैं। मुख्य रूप से यह पद्मासन अथवा सुखासन में बैठकर की जाती है। दोनों पैरों को सामने फैलाकर आसन पर स्थिर बैठें। एक पैर को घुटने से मोड़कर पंजे को दूसरी जंघा पर इस प्रकार रखें कि एड़ी नाभि के पास रहे। दूसरे पैर का घुटना मोड़ें और पंजे को दूसरी जंघा पर रखें। एड़ियां नाभि के पास रहें। घुटना, जंघा जमीन को स्पर्श करें। दोनों हाथ सीने के मध्य (आनन्द केन्द्र पर) नमस्कार मुद्रा में रहे। सुखासन के लिए बाएं पैर को दांई जंघा के नीचे रखें और दाएं पैर के पंजे को बाईं जंघा के नीचे रखें तथा स्थिरता से बैठें।

श्वास को भरते हुए हाथों को कानों से स्पर्श करते हुए ऊपर ले जाएं, फिर धीरे-धीरे सीने के मध्य आनन्द केन्द्र पर ले आएं। यह 'अर्हं' मुद्रा है।

परिणाम वीतरागता

- अर्हं मुद्रा से योग्यता बढ़ती है। व्यक्ति में अनेक अर्हताएं हैं वे सुप्त हैं उन्हें जागृत किया जा सकता है।
- शारीरिक दृष्टि से अंगुलियां, हथेलियां, मणिबंध, कुहनी और स्कंध शक्तिशाली बनते हैं।
- पेट, सीना, पसलियां और रीढ़ की हड्डी पर खिंचाव पड़ने से ये अंग स्वस्थ और सक्रिय होते हैं। जड़ता टूटती है। आलस्य भी दूर होता है। एड्रीनल तथा थाइमस ग्रंथियों के स्राव बदलने लगते हैं, शरीर का सारा कार्य सुचारू ढ़ंग से चलने लग जाता है। विसर्जन योग्य तत्त्व, विसर्जन तंत्र की ओर भेज दिए जाते हैं।

लाभ

- शरीर की क्रियाएं सुचारू रूप से चलने लगती हैं।

● शरीर स्वस्थ तथा शक्तिशाली बनता है जिससे आलस्य दूर होता है।

● इच्छाशक्ति का विकास होता है।

सिद्ध मुद्रा

''ऊँ ह्रीं णमो सिद्धाणं'' (मैं सिद्धों को नमस्कार करता हूँ) का उच्चारण करें।

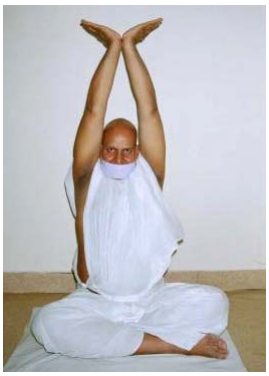

यह मुद्रा भी पद्मासन या सुखासन में बैठकर की जाती है। आसन की स्थिति पूर्व आसन विधि के अनुसार रहेगी। दृष्टि को दोनों भौहों के मध्य भृकुटी पर जमाएं, श्वास भरते हुए अपने हाथों को ऊपर ले जाएं, दोनों हथेलियों को ऊपर ले जाकर विपरीत दिशाओं में खोल दें। बाहें कानों को स्पर्श करती रहें, यह सिद्ध मुद्रा होगी, जितनी देर हो सके, इस मुद्रा में रूकें।

परिणाम स्वतंत्रता

यह मुद्रा पूर्णतया स्वतंत्रता का प्रतीक है क्योंकि हाथों को ऊपर ले जाकर खोलना ही स्वतंत्रता का प्रतीक है। क्योंकि हर व्यक्ति स्वतंत्र रहना पसंद करता है, वह बंधन में नहीं रहना चाहता है, दोनों हथेलियों को खोलकर ही व्यक्ति अपनी पूर्ण स्वतंत्रता की अभिव्यक्ति करता है।

लाभ

स्वास्थ्य लाभ होता है। भाव दशा निर्मल बनती है।

● हथेलियों के खुलने से हथेलियों की मांसपेशियों पर दबाव पड़ता है, उससे मांसपेशियां लचीली तथा पुष्ट होती है। विद्यार्थियों को परीक्षा में शीघ्रतापूर्वक देर तक लिखने में सुविधा होती है।

● एड्रीनल तथा थाइमस ग्रंथियों के स्राव संतुलित तथा क्रियाशील हो जाते है। ज्ञान चक्षुओं पर विशेष प्रभाव पड़ने से उनकी सक्रियता बढ़ जाती है।

● यह मुद्रा योगियों को कार्यसिद्धि प्रदान करती है।

आचार्य मुद्रा

''ऊँ ह्रीं णमो आयरियाणं'' (मैं आचार्यों को नमस्कार करता हूँ) का उच्चारण करें।

पूर्ववत् मुद्रा में बैठें, मन को मस्तिष्क में केन्द्रित करें, दोनों हाथों को खोले तथा दोनों अंगूठों से कंधों को स्पर्श करें, हथेलियां खुली हुई हों।

श्वास छोड़ते हुए वापस धीरे-धीरे सीने के मध्य आनंद केन्द्र पर हाथों को नमस्कार की स्थिति में लाएं, यह आचार्य मुद्रा है।

परिणाम शुद्धाचार

आचार्य अर्थात् धर्म को जानने वाला और उसका आचरण करने वाला इस मुद्रा में बहुत कुछ सीखने, जानने का अवसर मिलता है। आचरण की शुद्धता के लिए आचार्य का जीवन एक दिशासूचक ज्योति स्वरूप होता है।

इस मुद्रा द्वारा व्यक्ति कुछ जानने, कुछ पाने की चेष्टा करता है। आनन्द केन्द्र पर मन एकाग्र कर हाथ जोड़कर वह आचार्य से विनय करता है। दोनों हाथों को खुला रखकर वह आचार्य के मार्गदर्शन के प्रति खुले दिल से समर्पित होता है।

शारीरिक दृष्टि से ऐसा करने से आचार्य मुद्रा से सीना और फेफड़े स्वस्थ होते है। कंधे तथा भुजाओं की मांसपेशियां भी मजबूत तथा सक्रिय होती हैं। रासायनिक पाचन ग्रंथियों में स्राव सुचारू रूप से होने लगता है।

लाभ

● आचरण शुद्ध होता है।

● थाइमस ग्रंथि के स्राव से भावधारा निर्मल होती है।

उपाध्याय मुद्रा

''ऊँ ह्रीं णमो उवज्झायाणं'' (मैं

परम्पराएं हमारे इतिहास एवं संस्कृति की संरक्षक हैं।

● आचार्य तुलसी ●

संप्रसारक :

एम.जी. सरावगी फाउंडेशन

41/1-सी, झावूतल्ला रोड, बालीगंज-कोलकाता-700019

● दूरभाष : 22809695

उपाध्यायों को नमस्कार करता हूँ) का उच्चारण करें।

पूर्व मुद्राओं की तरह ही पद्मासन या सुखासन में बैठें। सीने के मध्य आनन्द केंद्र पर दोनों हाथों को मिलाकर नमस्कार की मुद्रा में बैठें। श्वास भरते हुए दोनों हथेलियों को दोनों तरफ से कान को स्पर्श करते हुए आकाश की ओर लें तथा स्वयं भी आकाश की ओर देखें। दोनों अंगुठों तथा तर्जनियों का अगला भाग मिला लें, सिर को भी पीछे ले जा कर ऊपर हथेलियों को देखें। जितनी देर इस मुद्रा में रुक सकें, रुकें, फिर पूर्ववत् स्थिति में आ जाएं, यही मुद्रा उपाध्याय मुद्रा कहलाती है।

परिणाम सही ज्ञान दर्शन

सामान्य योगी लोग ही इस आसन को ज्यादा करते हैं। सही ज्ञान और सही श्रद्धा ही मुक्ति का आधार है। ज्ञान तथा दर्शन द्वारा आराधना करने वाले व्यक्ति के लिए उपाध्याय मुद्रा जीवन का एक आदर्श है। उपाध्याय मुद्रा ज्ञान को बढ़ाती है, संकल्प स्थापित करवाती है, शारीरिक दृष्टि से थाईरॉयड और पैराथाइड पिनियल तथा पिट्यूटरी ग्रंथियों के स्राव संतुलित होते हैं जिससे ज्ञान का भण्डार विकसित होता है। व्यक्ति की समझ शक्ति परिपूर्ण हो जाती हैं।

लाभ

इस मुद्रा द्वारा निम्न लाभ होते हैं।

- गर्दन के दर्द में लाभ होता है।
- ग्रंथियों के स्राव से मानसिक संतुलन बना रहता है।
- शिक्षण तथा उपाध्याय (ज्ञान) के प्रति विनय भाव बनते हैं।
- व्यक्ति के विवेक में वृद्धि होती है।

मुनि मुद्रा

''ऊँ ह्रीं णमो लोएसव्वसाहूणं'' (मैं लोक के सभी साधुओं को नमस्कार करता हूँ) का उच्चारण करें।

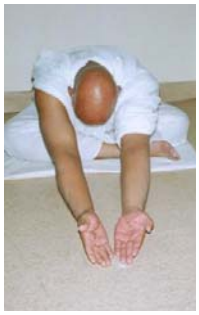

पूर्ववत् पद्मासन या सुखासन में बैठकर हाथों को ऊपर की ओर ले जाएं। सीने के मध्य आनंद केंद्र पर दोनों हाथों से नमस्कार की मुद्रा में लाएं। जब हाथ ऊपर की ओर जुड़े हों तो अंजलि मुद्रा बनाएं अर्थात् दोनों हाथों को मिलाकर अंजलि बनाएं। यह मुद्रा मुनि मुद्रा कहलाती है।

फिर श्वास को छोड़ते हुए हाथों को सीधा रखते हुए नीचे लाएं तथा सिर को भूमि की ओर झुकाएं।

श्रद्धा और भक्ति का समर्थन करते हुए ध्यान सीधा नीचे लाएं फिर मुद्रा बनाएं। इस मुद्रा में बहुत धीरे-धीरे मुद्राएं करनी चाहिए तथा इसमें संयम बरतना बहुत जरूरी है।

परिणाम समपर्ण

मुनि मुद्रा का भाव ही समर्पण है। इस मुद्रा से बुरी भावना से निर्मल भाव की अभिव्यक्ति होती है। मुनि आत्म धर्म से समर्पित होने से श्रद्धा और समर्पण के प्रतीक हैं।

अहंकार का विसर्जन होता है तथा मानवता के प्रति प्रेम की भावना जाग्रत होती है। शारीरिक दृष्टि से थाइमस ग्रंथि के स्राव संतुलित होते हैं। करूणा और मैत्री का विकास होता है और मन से ईर्ष्या-द्वेषजनित विकार दूर होते है।

लाभ

- इस मुद्रा द्वारा शरीर स्वस्थ होने से मन की प्रसन्नता बढ़ती है।
- करूणा और मैत्री भाव का विकास होता है।
- अहंकार का विसर्जन होता है।
- श्रद्धा एवं समर्पण की भावना जाग्रत होती है।

देह-सज्जा या निर्लज्जता?

(..... पृष्ठ 23 का शेष)

फेंकने को भटकना! कवयित्रियों, लेखिकाओं में जहां बेशर्मी की पुतली तसलीमा नसरीन है, वहीं सुश्री रेहाना आतिफ़ भी हैं, जो कहती हैं

हर तरफ 'आतिफ' भटकती फिर रही हैं आजकल,
सिन्फे-नाजुक छोड़कर शर्म-ओ-हया की मंजिलें।

इतना ही नहीं, वे तो उनके अर्धनग्न लिबास को मां मरियम की पाकीज़गी तथा गरिमा पर एक कलंक मानकर कहती हैं

ये सच है दुख्तरे-मिल्लत की बेलिबासी ने,
जहाँ में अज़मते-मरियम को शर्मसार किया।

अच्छा साहब, जो खुलेबंदों सरेआम, हर ओर दिखाई पड़ रहा है। यदि यह निर्लज्जता है तो कहां से आई? लज्जा कहां खो गई? बेच दी अथवा गिरवीं रख दी? अब इसके जवाब में मुझे तो कुछ कहते नहीं बनता! हां, महात्मा विदुर का एक वचन याद आता है 'बुढ़ापा सुंदर रूप को, आशा धीरता को, मृत्यु प्राणों को, क्रोध लक्ष्मी को, और काम, लज्जा को नष्ट कर देता है।'

कभी आप भी सोचकर देखिएगा!

10, राज होटल, पुल चमेली, अम्बाला छावनी 133001 (हरियाणा)

रामेश्वर ने किशनलाल के कंधे पर हाथ मारते हुए कहा किशनलालजी, एक गलत धारणा के शिकार हम सभी माता-पिता होते हैं। ''कौन सी'' किशनलाल ने पूछा तो रामेश्वर ने उत्तर दिया यही कि बच्चों को हमने पैदा किया है। किशन की आंखों में आश्चर्य के भाव तैर गए। रामेश्वर ने कहा तुम यही कहना चाहते होगे कि बच्चे मां बाप के नहीं तो किससे हैं? किशन ने ''हां'' कहा। रामेश्वर ने हंसते हुए कहा यही तो गलतफहमी है हर मां बाप को। बच्चे हमसे आते जरूर हैं पर वे हमारे नहीं है। वे ईश्वर के अंश हैं। हम लोग तो सिर्फ उनके धरती पर आने का माध्यम भर बनते हैं। जरिया हैं। हमें उनके व्यक्तित्व का पूरा सम्मान करना चाहिए। परन्तु हम अपने आप को उनका मालिक जन्मदाता मान लेते हैं। सोचो जरा सोचो मनुष्य तो बहुत बड़ी बात है क्या हम एक नन्हीं-सी चींटी में जान डालने में भी सक्षम हैं। नहीं ना तो फिर इतना भ्रम क्यों पाल लेते हैं।

बदलते वक्त के साथ

• रजनीकांत शुक्ल •

किशनलाल आज फिर उदास हो गया। उसकी आंखों में बीते दिन तैर गए। अभी कितने दिन बीते हैं लगता है जैसे कल की बात हो। उसका बेटा रमेश और बेटी प्रियंका। कितना प्यार करता था वह अपने इन दोनों बच्चों को। उसने अपना परिवार भी ज्यादा नहीं बढ़ाया। रोडवेज में क्लर्की करते-करते हेड क्लर्क के पद से अभी दो वर्ष पहले ही सेवानिवृत्त हुआ था। रमेश और प्रियंका दोनों की शादी कर दी। दोनों ही अपने-अपने घरों में खुश थे। उनके भी दो-दो बच्चे थे। रोहित और प्रशान्त रमेश के जबकि अनमोल और गीतिका प्रियंका के। रमेश नौकरी लगने के बाद शहर जाकर रहने लगा। जबकि किशनलाल अपनी पत्नी के साथ गांव में ही खुश था।

किशनलाल को आज अपने फैसले पर पछतावा होने लगा क्यों वह गांव छोड़कर शहर आया। अच्छा खासा अपनी पत्नी के साथ रह रहा था। लेकिन पोतों का मोह उसे खींच लाया। उसे अपना बचपन याद हो आया। जब वह नन्हा बच्चा था। उसके पिता के तीन भाई और दो बहनें थीं। घर में सारे दिन चहल-पहल रहती। घर की बहुएं मुंह-अंधेरे उठ जातीं। कोयले की अंगीठी सुलगा दी जाती जिसका अजीब-सा धुआं हवा के साथ-साथ बहता। सभी उसके आदी हो गए थे जब कभी हवा एक दिशा में ही लगातार बहती तो धुएं में सांस लेना भी मुशिकल हो जाता था। लोग खांसने लगते। कोई चिल्लाता अरे ये अंगीठी हटाओ यहां से। तब कोई उसकी जगह बदल देता।

लकड़ियों की जगह ये कोयले सस्ते पड़ते थे। रेलवे लाइन के पास घर होने से कोयला बीनने वाले रेल की पटरियों से कोयला बीनते और उन्हें किलो के भाव में तौलकर गली-गली फेरी लगा कर बेच देते। कई बार अच्छा कोयला भी हाथ आ जाता। मुहल्ले के बेरोजगारों को यह रोजगार मिला हुआ था। कई बार वे रेलवे ड्राइवरों से प्रार्थना करके कोयला मनचाही जगह पर इंजन से झरवा लेते। धीरे-धीरे इसमें कमाई बढ़ती देखकर वे ड्राइवरों को इसके लिए पैसा भी देने लगे। घरेलू स्तर पर व व्यवसायिक पैमाने पर मिठाई की दुकानों, ढाबों आदि में ऐसे कोयले की मांग अधिक रहती थी। अब तो खैर न कोयले वाले इंजन रहे और न कोयले की जरूरत। चारों ओर कुकिंग गैस का बोलबाला है। न इसमें धुएं का झंझट न हाथ काले होने की मुसीबत। तभी किचन में प्रेशर कुकर ने तेज सीटी बजाई। किशनलाल की सोच को एक तीव्र झटका लगा। सीटी की आवाज ने उसे अतीत से लाकर वर्तमान में पटक दिया।

वह वर्तमान जिसमें वह असंतुष्ट था। अतीत मेरे सुन्दर प्यारे अतीत। वृद्धों को अतीत से बड़ा मोह होता है। उसे याद आया जब वह जवान था और नया-नया नौकरी में आया था तो कितना जिंदादिल था। यह उद्धरण वह कितनी-कितनी बार लोगों को सुनाता था। एक ड्राइवर की ट्रेनिंग की समाप्ति के बाद साक्षात्कार में पूछा गया। अगर तुम्हारे वाहन के सामने कोई बूढ़ा व्यक्ति आ जाए तो तुम क्या करोगे? ड्राइवर ने कहा मैं अपनी गाड़ी उसके आगे से निकालूंगा क्योंकि वाहन के सामने आने पर बूढ़ा व्यक्ति पीछे पलट जाएगा। बूढ़े अतीत गामी होते हैं। अगर नौजवान आ जाए तो.... ड्राइवर बोला, मैं उसके पीछे

से निकालूंगा क्योंकि नौजवान हमेशा अग्रगामी होते हैं वे आगे की ओर बढ़ेंगे। और अगर कोई बच्चा सामने आ जाए तो.... तो मैं अपना वाहन रोक लूंगा ड्राईवर बोला। ''क्यों'' प्रश्नकर्ता ने पूछा। क्योंकि बच्चे का कोई भरोसा नहीं। वह आगे भी जा सकता है पीछे भी। प्रश्नकर्त्ता ने संतुष्ट होकर ड्राईवर को नौकरी पर रख लिया। बच्चे की प्रवृत्ति की बात सोच कर किशनलाल के चेहरे पर मुस्कान तैर गई।

वह सोचने लगा। बचपन में सारी संभावनाएं मौजूद होती हैं। अतीतगामी होने की और अग्रगामी होने की भी। जैसी परवरिश की जाएगी उसी के मुताबिक बच्चे की सोच बनेगी। लेकिन कहना एक बात है और करना बिलकुल अलहदा किस्म का अनुभव। किशनलाल बड़बड़ाने-सा लगा मुझमें आखिर क्या कमी रह गयी है? मैं तो भविष्य की बात सोचकर ही रमेश के साथ रहने चला आया। अपनी आगामी पीढ़ी को अच्छे संस्कार, आदर्श और मूल्य मिले, यही सब बातें तो थीं जिसकी वजह से वह इस महानगर की भीड़ में आ गया था। वरना यहां है ही क्या? लोगों के पास वक्त नहीं है। दूसरों के लिए छोड़ों, अपने लिए भी नहीं।

रमेश बैंक में था और उसकी पत्नी शान्ति स्कूल में अध्यापिका। बच्चे अभी छोटे ही थे। रोहित बड़ा था दसवीं कक्षा में और प्रशांत सातवीं कक्षा में। सुबह का समय इतना हड़बड़ी का होता था कि कुछ पूछो मत। एक दिन जब शान्ति प्रशान्त पर नाराज होने लगी तो किशनलाल को लगा वह प्रशान्त से नहीं जैसे उससे कह रही हो। स्कूल में भी करो, घर में भी मरो अपनी तो कोई जिंदगी ही नहीं है। अपना-अपना काम नहीं कर सकते। मैं ही तुम्हारे कपड़े धोऊं, मोजे-जूते ढूंढूं, खाना पकाऊं। कभी खुद भी करो अपना काम।'' वह और भी कुछ बड़बड़ाती रहती, अगर प्रशांत सहम कर खुद मोजे ढूंढने न लगता। यह लगभग रोज की ही कहानी थी। कभी-कभी किशनलाल और रोहिणी को लगता। वे शहर में आकर कहीं अपने बेटे पर बोझ तो नहीं बन गए हैं। महानगर के कोलाहल में उनका जी वैसे भी नहीं लगता। नौ बजते-बजते घर खाली हो जाता। दोपहर का समय ही मिलता जब वे आपस में थोड़ी बातचीत कर लेते थे। टेलीविजन चलाते तो कोई कार्यक्रम उन्हें ढंग का नहीं लगता। कई चैनलों को देखने से पता नहीं लगता कि कार्यक्रम के बीच में विज्ञापन हैं या विज्ञापनों के बीच कार्यक्रम है। कई कार्यक्रम अनावश्यक रूप से इतने ज्यादा विस्तारित किए जाते कि देखकर खीज आने लगती। बस बार-बार चैनल बदलते-बदलते अंगुलियां दुखने लगतीं।

दोपहर बाद बच्चे स्कूल से थके हारे घर आते। खा-पीकर ट्यूशन पढ़ने चले जाते। कई बार किसी पार्टी या मीटिंग में रमेश और शान्ति को रात भी हो जाती। इतनी अधिक व्यस्तता रहती कि किसी को किसी से ठीक ढंग से बात करने का अवसर भी न रहता। ऐसे में अक्सर किशनलाल को अपने मित्र का सुनाया हुआ शेर याद आ जाता ''कौन कहता कि मुलाकात नहीं होती है, रोज मिलते हैं मगर बात नहीं होती है।''

किशन ने कई बार सोचा कि इस बारे में रमेश से बात करे लेकिन ऑफिस से लौटने के बाद रमेश और शान्ति की थकान और परेशानी समझकर कभी उन्हें छेड़ने की हिम्मत नहीं हुई। रोहिणी भी कभी बहू या बेटे से शिकायत नहीं करती। हाँ दोपहर में जब अकेली होती तो किशन से अपना दुखड़ा रोती। आज चाय देखी एक दम पनीली बनी थी कोई स्वाद नहीं था। परसों बहू ने चाय रख दी बताया नहीं कि मांजी ये चाय रखी है, नतीजा यह हुआ जब तक मैंने देखा चाय ठंडी हो चुकी थी। किशनलाल की अपनी समस्याएं भी कम न थीं। रमेश उससे कभी-कभार पूछ लेता बाबूजी सब कुछ ठीक तो है। क्या इतना पूछने भर से सब कुछ ठीक हो जाता है? किशन ने सोचा।

कहां गए वे मूल्य वे आदर्श प्रेम और सौहार्द क्या यही मशीनी जिंदगी जीने को अभिशप्त हो गए हैं हम सब। सारे दिन में से इतना समय तो निकाला जा सकता है कि सब मिल बैठकर हंस बोल सकें। अपने मन की बात कर सकें। ये तो वही हुआ कि ''सुबह होती है, शाम होती है, जिंदगी यूं ही तमाम होती है।'' ऐसा लगता है जैसे दिन काट रहे हों या कोई सजा पूरी कर रहे हों। कुछ जिंदगी में बदलाव आए यह सोचकर किशनलाल ने रोहिणी से सलाह कर अपनी बेटी प्रियंका के घर जाने का इरादा बनाया और एक दिन किशन ने रमेश से कह दिया कि वह और रोहिणी उसकी बहन प्रियंका के घर जाएंगे। रमेश ने कोई विशेष हर्ष या शोक प्रकट नहीं किया बस इतना जरूर पूछा बाबूजी यहां कोई कष्ट तो नहीं है। किशन ने मन ही मन में कहा है तो लेकिन बता नहीं सकता। लेकिन प्रकट में चेहरे पर कोई भाव न लाते हुए कहा कष्ट तो नहीं बस बहुत दिन हुए मन करता है कि बिटिया को देख आएं।

ठीक है मैं टिकट ला दूंगा। कब का ले आऊं? अगले हफ्ते का, रमेश ने कहा। शान्ति को चिंता हो गई कि अब दोपहर में काम वाली बाई आएगी तब घर कौन संभालेगा। एक मुसीबत यह और आ मरी। अभी तक बाबूजी और मांजी थे तो कोई चिंता नहीं थी। किशन और रोहिणी सोच रहे थे कि ये थी इस घर में हमारी भूमिका, चौकीदारी करने की।

एक हफ्ते बाद वे दोनों प्रियंका के घर में थे। माता-पिता को अप्रत्याशित रूप से अपने सामने पाकर प्रियंका बेहद प्रसन्न हुई। प्रियंका भी कामकाजी महिला

थी। किशनलाल अपनी क्लर्की की नौकरी में और कुछ कर पाया हो या न कर पाया हो दोनों बच्चे पढ़ा दिए और वे कमा भी रहे थे। प्रियंका एक ऑफिस में स्टेनो थी। उसका पति भी एक ऑफिस में कार्यरत था। ससुर रामेश्वर प्रसाद एक साल पहले ही रेलवे से रिटायर हुए थे। जहां किशनलाल का मन बुझा-बुझा था वहीं रामेश्वर का चेहरा ताजे खिले गुलाब की ताजगी लिए हुए था। किशन और रोहिणी को देखकर सारा परिवार खुश हो गया। अनमोल और गीतिका भी नाना-नानी को अपने पास पाकर बहुत प्रसन्न थे।

किशन को देखकर आश्चर्य हुआ जब सुबह उठकर उसने रामेश्वर को घर में न पाया। पूछने पर प्रियंका ने बताया बाबूजी, पिताजी रोज सुबह योग की कक्षा में जाते हैं। तभी दूध का डिब्बा हाथ में लिए रामेश्वर ने घर में प्रवेश किया। प्रियंका ने लपकते हुए दूध का डिब्बा रामेश्वर के हाथ से ले लिया और बोली बाबूजी! मैं आपके लिए अभी गर्मागर्म चाय लाई तब तक आप पिताजी से बातें करो।

किशन ने शिकायत वाले अंदाज में रामेश्वर से कहा अरे भाई हमें क्यों नहीं जगा लिया। रामेश्वर ने सफाई दी मैंने यह सोचा कि थके हुए होगे। चलो कोई बात नहीं कल चल देंगे। सुबह जल्दी उठकर नहा धोकर चलेंगे योग की कक्षा में। वापसी में डेयरी से दूध लेते आएंगे। किशन ने आश्चर्य से पूछा घर का दूध आप लाते हैं? रामेश्वर ने हंसते हुए कहा सुबह के समय घर पर सभी व्यस्त रहते हैं मैं तो खाली ही आता हूं उधर से। बस दूध पकड़े आता हूं। इसमें कौन सा वजन है।

अगले दिन सुबह जब रामेश्वर उठे तो उन्होंने किशन को भी जगा दिया। नहा धोकर सुबह की सैर करते हुए जब वे पार्क में योग की कक्षा में पहुंचे तो वहां लोगों ने बहुत प्रेमपूर्वक किशन का स्वागत किया। उन्होंने आग्रह किया कि जब तक वह यहां हैं सुबह नियमित रूप से योग की कक्षा में शामिल हों। किशन को बहुत अच्छा लगा। नहाए धोए बदन में सुबह की ताजी हवा ने ताजगी भर दी थी। आधा घंटा आसन और आधा घंटा प्राणायाम का अभ्यास निश्चित समय पर शुरू हुआ और नियत एक घंटे में समाप्त भी हो गया। किशनलाल ने देखा उनमें से कई लोग नौकरी करने वाले भी थे और कुछ रामेश्वर और उसकी तरह नौकरी से रिटायर हुए लोग भी।

किशन को एक अनूठा अनुभव हुआ जिससे वह अब तक वंचित था। वापसी में दूध लेते समय बातों-बातों में किशन ने प्रश्न किया भई जिंदगी भर काम करते रहे। रिटायर हुए हो अब तो आराम करो। यह सब काम घर वालों को करने दो। रामेश्वर ने जोरदार ठहाका लगाया किशनलालजी, ये सब मैं किसी और के लिए नहीं बल्कि अपने लिए करता हूं। भई, रिटायर होकर मैं बैठ गया होता तो मेरा यह शरीर भी बैठ जाता। इसे चलाता रहता हूं तो खुद भी चल रहा हूं। देखो एकदम फिट हूं रामेश्वर ने अपनी मसल्स दिखाते हुए कहा। किशन को लगा जैसे रामेश्वर मन से अभी भी जवान है। मन का सीधा प्रभाव शरीर पर पड़ता है यही कारण है कि वह अपने तन में कोई स्फूर्ति नहीं पाता है बुझा-बुझा सा रहता है। कहां खो गये दोस्त रामेश्वर ने मुस्कराते हुए पूछा। कहीं नहीं किशनलाल ने उत्तर दिया। शाम को जब रामेश्वर बाजार की तरफ टहलने जाने लगे तो किशनलाल को बताना नहीं भूले। किशनलाल ने भी सोचा घर पर पड़े-पड़े क्या करेंगे चलो चलते हैं। रास्ते भर रामेश्वर ने शहर, बाजार और दुनिया जहान की बातें कीं। वापसी में सब्जी बाजार से होकर गुजर रहे थे तो घर के लिए सुंदर सब्जियां खरीद लीं।

किशन को फिर लगा, यह क्या? रामेश्वर ने हंसते हुए किशनलाल से कहा मैं तुम्हारी परेशानी समझ रहा हूं। तुम अभी भी अपने उस पुराने खोल से बाहर नहीं आ पाए। अच्छा एक बात बताओ? ''क्या'' वाले अंदाज में किशन ने पूछा। पृथ्वी पर पुराना प्राणी कौन है जिसकी उम्र भी काफी होती है? किशन को यह समझ में नहीं आया कि आखिर इस प्रश्न को पूछने में रामेश्वर का उद्देश्य क्या है? फिर भी उसने जवाब दिया कछुआ, लगभग तीन सौ वर्ष तक जीता है? रामेश्वर ने कहा कारण जानते हो ऐसा क्यों है? क्योंकि उसने समय और परिवेश के साथ अपने को ढाल लिया। जड़ता नहीं पाली। भाई मेरे! अब पहले वाला जमाना नहीं रहा। वक्त काफी आगे बढ़ चुका है और हम हैं कि वहीं के वहीं खड़े हैं। पहले मैं भी तुम्हारी तरह से था लेकिन एक दिन बेटी प्रियंका ने मेरी आंखें खोल दी।

अब चौंकने की बारी किशनलाल की थी। क्या, ये आप क्या कह रहे हैं? उसने आश्चर्य से रामेश्वर की ओर देखते हुए पूछा। रामेश्वर ने कहा आप तो जानते ही हैं। मेरी पत्नी की मृत्यु अभी कुछ समय पूर्व ही हुई है। मैं और मेरी पत्नी दोनों ने तय किया था कि हम लोग अपने ढंग से जिएंगे। लेकिन पोते-पोती के मोह ने हमें मजबूर कर दिया। जब प्रियंका ने शुरू-शुरू में नौकरी ज्वाइन की तो घर में तनाव रहने लगा। सुबह के समय बच्चों और पति को ऑफिस के लिए तैयार करना, और खुद भी अपने ऑफिस के लिए तैयार होना। सास-ससुर का भी पूरा ख्याल रखना। अब सोचता हूं कि वह बेचारी तो चकरघिन्नी बन जाती थी। लेकिन यहां मैं आपकी तारीफ करूंगा आपने अपनी बेटी को क्या संस्कार दिए हैं? एक रोज छुट्टी के दिन नाश्ते की टेबल पर सभी लोगों

के बीच प्रियंका ने अपनी समस्या खुले मन से रखी।

उसने कहा मैं नौकरी करके घर के लिए वेतन लाती हूं। घर का काम भी है और ऑफिस का समय भी। यदि आप सब लोग थोड़ा-थोड़ा सहयोग करें तो ठीक है, अच्छा है और अगर कहें तो मैं नौकरी छोड़ने को तैयार हूं। सबसे पहले अनमोल और गीतिका बोले मम्मी हम आपके लिए क्या कर सकते हैं? प्रियंका ने कहा मेरे बच्चों मेरे लिए नहीं अगर तुम अपने लिए ही कुछ कर लो तो वह मेरी मदद हो जाएगी। वो कैसे अनमोल ने पूछा। प्रियंका बोली शाम को अपना स्कूल बैग टाइम-टेबल के हिसाब से लगा लो सुबह अपने आप तैयार हो जाओ। रोज पूछते हो मम्मी मेरा ब्रश कहां रखा है? मोजे कहां हैं? अपना नाश्ता खुद आगे बढ़कर ले लो। सभी सामान यथास्थान रखो। तुम्हारे पापा ऑफिस से लौटते समय सब्जी लेते आएं। दादाजी टहलने के बाद उधर से लौटते समय दूध ले आएं तो सोचो सारा काम कितना आसान हो जाए।

सच कहूं किशनलाल पहले तो मुझे बहुत गुस्सा आया। लगा ये छोटे मुंह बड़ी बात है लेकिन जब बच्चे हुर्रे करके बोले काम करेंगे हम सब मिलकर मम्मी छुट्टी रही तुम्हारी। तो मुझे भी लगा। इसमें गलत क्या है हम सब एक परिवार के ही तो अंग हैं। अगर इस परिवार रूपी गाड़ी के एक हिस्से पर ही ढेर सारा बोझा लाद दिया जाएगा तो वो या तो कमजोर हो जाएगा या टूट जाएगा। दोनों ही स्थितियों में नुकसान सभी का होगा। किशनलाल की आंखों में दृढ़ निश्चय की चमक आ गई।

रामेश्वर ने किशनलाल के कंधे पर हाथ मारते हुए कहा किशनलालजी, एक गलत धारणा के शिकार हम सभी माता-पिता होते हैं। ''कौन सी'' किशनलाल ने पूछा तो रामेश्वर ने उत्तर दिया यही कि बच्चों को हमने पैदा किया है। किशन की आंखों में आश्चर्य के भाव तैर गए। रामेश्वर ने कहा तुम यही कहना चाहते होगे कि बच्चे मां बाप के नहीं तो किससे हैं? किशन ने ''हां'' कहा। रामेश्वर ने हंसते हुए कहा यही तो गलतफहमी है हर मां बाप को। बच्चे हमसे आते जरूर हैं पर वे हमारे नहीं है। वे ईश्वर के अंश हैं। हम लोग तो सिर्फ उनके धरती पर आने का माध्यम भर बनते हैं, जरिया हैं। हमें उनके व्यक्तित्व का पूरा सम्मान करना चाहिए। परन्तु हम अपने आप को उनका मालिक जन्मदाता मान लेते हैं। सोचो जरा सोचो मनुष्य तो बहुत बड़ी बात है क्या हम एक नन्हीं-सी चींटी में जान डालने में भी सक्षम हैं। नहीं ना तो फिर इतना भ्रम क्यों पाल लेते हैं।

किशन ने कहा आप ठीक कहते हैं। रामेश्वर ने फिर कहा हम बच्चों को बुढ़ापे का सहारा मान कर उनके पालन-पोषण में अपना बहुत कुछ लगा देते हैं। पर मत भूलो किशनलाल भगवान बुद्ध की शिक्षा को याद करो। अपेक्षाएं मत करो अपेक्षाएं दुःख देती हैं। बुढ़ापे का सहारा न तो बेटा है ना बेटी न कोई और जो तुमसे बाहर है। बुढ़ापे का सहारा हो तुम स्वयं तुम्हारा आत्मविश्वास। अपने आत्मविश्वास को कभी कमजोर मत होने देना। हर मुसीबत हर मुश्किल में तुम्हें जहाँ से सहारा मिलेगा वह तुम्हारा स्वयं का अपने पर विश्वास है। जिसके सहारे हर विघ्न हर बाधा का मुकाबला तुम बड़ी आसानी से कर सकोगे।

रामेश्वर की बात सुनकर किशनलाल को लगा जैसे जामवंत ने हनुमान को उनके बल की याद दिला दी हो। उसकी जिंदादिली, खोया हुआ आत्मविश्वास जैसे तली से उठकर ऊपर की ओर आ रहा था। वह अपने को बहुत हल्का महसूस कर रहा था।

एक दिन जब रोहिणी ने सुबह बच्चों और प्रियंका के पति को उत्साहपूर्वक घर के काम में हाथ बंटाते देखा तो उससे भी रहा नहीं गया और वह रसोई में सब्जी काटने बैठ गई। किशनलाल को बड़ा आश्चर्य हुआ। रोहिणी कभी भी ऐसे शान्ति के किचन में काम करने नहीं बैठी थी। उसे लगा ये सब वातावरण का प्रभाव है। वह खुद भी तो घर के काम के प्रति उदासीनता का रवैया रखता था।

लेकिन अब नहीं। उसे अपने बेटे-बहू पोतों की बड़ी याद आ रही थी। वह जल्दी से जल्दी घर पहुंचना चाहता था। जो काम यहां उसकी बेटी प्रियंका ने किया था। अब वही काम उसे अपने घर में करना था। बदलते वक्त के साथ उन्होंने अपनी भूमिका और उपयोगिता तय कर ली थी।

घर पहुंचकर किशनलाल रोहिणी रोहित और प्रशान्त एक अलग कमरे में बैठकर न जाने क्या खुसुर-पुसुर करते रहे। अगले दिन से ही घर का नजारा बदला हुआ था। दादा-दादी और पोते अपूर्व उत्साह से लगे थे उन्होंने रमेश को भी अपने साथ शामिल कर लिया। शाम को पोतों के पास बैठे कहानी सुनाते दादा किशनलाल के चेहरे से ताजगी फूटी पड़ रही थी। शान्ति और रमेश के मन में अपने बाबूजी के प्रति सम्मान बढ़ गया था। घर के काम की व्यस्तता कुछ कम हुई तो रमेश और शान्ति के पास समय था कि वे अब अपने बाबूजी और मांजी के पास बैठकर उनका आशीष और सलाह ले सकें। किशनलाल को लगा जैसे उसने अपनी जिंदादिली वापस पा ली हो। उसने महसूस किया खुशियों वाली ताली की आवाज लाने के लिए दोनों हाथों की भूमिका होती है।

एफ–380–एफ, सेक्टर–12,
विजयनगर, गाजियाबाद (उ.प्र.)

अणुव्रत अनुशास्ता आचार्य महाप्रज्ञ द्वारा उद्घोषित

अणुव्रत उद्बोधन सप्ताह

(5 सितंबर से 11 सितंबर 2009)

अणुव्रत आंदोलन न सम्प्रदाय है न कोई परम्परा। असाम्प्रदायिक और शाश्वत धर्म है अणुव्रत। इसके परिपार्श्व में चरित्र विकास, नैतिक और अहिंसक मूल्यों की पुर्नस्थापना का अभियान विगत 60 वर्षों से गतिशील है। अणुव्रत मानव जाति के विकास के लिए पथ दर्शन है जिसकी शाश्वत अपेक्षा है। अणुव्रत कार्यक्रमों की शृंखला में इस वर्ष अणुव्रत उद्बोधन सप्ताह का क्रम निम्नानुसार निर्धारित हुआ है

◆ 5 सितंबर, 2009 शनिवार : सांप्रदायिक सौहार्द दिवस

दुनिया में संप्रदाय सदा रहे हैं, आगे भी रहेंगे। आवश्यकता है कि संप्रदाय सापेक्षता को समझा जाए तथा इससे जुड़ी संकीर्णता, द्वेष, दुर्भावना आदि को दूर किया जाए। विभिन्न संप्रदाय के प्रमुखों तथा अनुयायियों के साथ मिलकर संप्रदायों की सापेक्षता पर विचार किया जाए एवं सांप्रदायिक सौहार्द का वातावरण बनाया जाए। इस दिवस पर सर्वधर्म सम्मेलन, गोष्ठियां, सेमिनार आदि आयोजित हों।

◆ 6 सितंबर, 2009 रविवार : अहिंसा दिवस

वर्तमान में बढ़ती हुई हिंसा को रोकने के लिए अणुव्रत अनुशास्ता आचार्य महाप्रज्ञ ने अहिंसा समवाय के माध्यम से अहिंसा प्रशिक्षण का प्रवर्तन किया है। इस दिन गोष्ठियों, सभाओं, शिविरों द्वारा अहिंसा के स्वर को जन-जन तक पहुंचाया जाए। अहिंसा में विश्वास रखने वाले व्यक्तियों/संगठनों से संपर्क किया जाए एवं सामूहिक कार्यक्रम आयोजित किए जाएं।

◆ 7 सितंबर, 2009 सोमवार : अणुव्रत प्रेरणा दिवस

जन-जन को अणुव्रत आचार-संहिता, वर्गीय आचार-संहिता की जानकारी दी जाए। अणुव्रती बनो अभियान संचालित हो। अणुव्रत समिति का गठन किया जाए। 'अणुव्रत' आधारित भाषण, निबन्ध, चित्रकला प्रतियोगिताएं आयोजित की जाएं।

◆ 8 सितंबर, 2009 मंगलवार : पर्यावरण शुद्धि दिवस

शुद्ध पर्यावरण स्वस्थ जीवन के लिए आवश्यक है। पर्यावरण चेतना को जन-जन तक पहुंचाया जाये यही इस दिवस का उद्देश्य है। इस दिन स्थान-स्थान पर यात्राएं, भाषण, चित्रकला, नाटक, गायन प्रतियोगिताएं, प्रदर्शनियां आयोजित की जाएं।

◆ 9 सितंबर, 2009 बुधवार : नशामुक्ति दिवस

नशा नाश का द्वार है। आज नशे के अनेक प्रकार प्रचलित हैं। सभी लोगों को नशे के दोषों, हानियों की जानकारी दी जाये तथा नशामुक्ति का संकल्प कराया जाए। इस कार्यक्रम में चिकित्सकों, नशामुक्ति से संबंधित सरकारी विभागों तथा स्वयंसेवी संस्थाओं का सहयोग भी लिया जाए। नुक्कड़-नाटक, गीत, प्रदर्शनी, भाषण आदि के विशेष कार्यक्रम आयोजित किए जाएं।

◆ 10 सितंबर, 2009 वृहस्पतिवार : अनुशासन दिवस

अनुशासन व्यक्ति और समाज का मूलाधार है। अनुशासन के अभाव में जीवन बिखर जाता है। इस दिन अनुशासन के संदर्भ में जानकारी दी जाये एवं अनुप्रेक्षाओं के प्रयोग भी करवाए जायें।

◆ 11 सितंबर, 2009 शुक्रवार : जीवन विज्ञान दिवस

शिक्षा का सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक रूप जीवन में निखरे। शिक्षा को मूल्यपरक बनाने के लिए जीवन विज्ञान विकल्प है। इस दिन शिक्षण संस्थानों में विद्यार्थियों शिक्षक-शिक्षिकाओं को जीवन-विज्ञान की जानकारी दी जाये एवं प्रयोग भी करवाये जायें।

अणुव्रत महासमिति

अणुव्रत भवन, 210 दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, नई दिल्ली–110002 ● दूरभाष : (011) 2323 3345
फैक्स : (011) 2323 9963 ● E-mail: anuvrat_mahasamiti@yahoo.com

भारतीय संस्कृति में अहिंसा का महत्त्व

वर्तमान शिक्षा है भ्रष्टाचार के लिए जिम्मेदार : आचार्य महाप्रज्ञ

लाडनूं 11 अगस्त। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सर संघचालक मोहन भागवत ने कहा कि अहिंसा एवं सत्य ही हमारी संस्कृति है। हम समय के साथ परिवर्तन कर रहे हैं, लेकिन हमारी अहिंसक शैली तथा सत्यवादिता की परंपरा आज भी प्रासंगिक है। मोहन भागवत जैन विश्व भारती स्थित सुधर्मा सभा में आचार्य महाप्रज्ञ एवं युवाचार्य महाश्रमण के सान्निध्य में आयोजित कार्यक्रम में बोल रहे थे।

उन्होंने कहा सत्य को शब्दों से परिभाषित नहीं किया जा सकता। सत्य तो सत्य है। सत्य का कभी अभाव नहीं होता और असत्य का कभी प्रभाव नहीं होता। उन्होंने कहा कि सत्य को जानें, तभी संसार की वास्तविकता का ज्ञान हो सकता है।

अणुव्रत अनुशास्ता आचार्य महाप्रज्ञ ने कहा सत्य व अहिंसा पर भारतीयों ने अत्यधिक चिंतन-मनन किया है। इसी कारण उनके व्यवहार में इसका प्रभाव दिखाई देता है। उन्होंने बदलते परिवेश पर अंगुलि निर्देश करते हुए वर्तमान शिक्षा पद्धति को बढ़ते भ्रष्टाचार के लिए जिम्मेदार बताया। वर्तमान शिक्षा जगत भ्रष्टाचार की जड़ है। हमारी शिक्षा पद्धति में शिक्षा के दौरान कहीं भी अहिंसा, सत्य एवं नैतिकता का कोई ज्ञान समाहित नहीं किया गया है। इसी वजह से पढा़ लिखा व्यक्ति भी आचार-व्यवहार में नगण्य रह जाता है। शिक्षक, परिजन व सरकार केवल पैसा कमाने वाली शिक्षा को महत्त्व देते है, ऐसे में भ्रष्टाचार का बढ़ना जायज है। उन्होंने कहा कि हम समाज के समक्ष नैतिकता के साथ सत्य व अहिंसा को शिक्षा के रूप में प्रस्तुत करें। इससे देश व विश्व का कल्याण संभव है। युवाचार्य महाश्रमण ने जीवन में अच्छाइयों को अपनाने का आह्वान करते हुए कहा कि भारतीय संस्कृति हो या पाश्चात्य संस्कृति दोनों में जो बातें अच्छी हो, उन्हें अपनाना चाहिए और दोनों की बुराइयों को त्यागना चाहिए। साध्वी प्रमुखा कनकप्रभा ने भी विचार व्यक्त किए। संचालन मुनि मोहजीत कुमार ने किया।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सर संघचालक मोहन भागवत के साथ संघ के क्षेत्रीय प्रचारक प्रमुख नंदलाल जोशी, क्षेत्रीय प्रचारक प्रमुख संजय कुमार, जोधपुर प्रचारक विजय कुमार, जोधपुर प्रांत प्रचारक विजय कुमार, विद्याभारती राजस्थान क्षेत्र के संगठन मंत्री शिवप्रसाद, विद्याभारती के जोधपुर प्रांत के सह-संगठन मंत्री दुर्गसिंह राजपुरोहित व विभाग प्रचारक निंबाराम भी लाडनूं पहुचे।

जैन विश्व भारती का भ्रमण

सुधर्मा सभा में प्रवचन के बाद मोहन भागवत ने जैन विश्व भारती का भ्रमण कर यहां से संचालित विभिन्न उपक्रमों की जानकारी ली। इस दौरान उन्होंने वर्धमान ग्रंथागाार, आरोग्य, आचार्य तुलसी स्मारक, सचिवालय, तुलसी अध्यात्म नीडम आदि के बारे में जानकारी ली। इसके अलावा उन्होंने तुलसी कला प्रेक्षा में सजी साधु-साध्वियों द्वारा हस्तनिर्मित कलाकृतियों को भी देखा। उन्होंने आर्ट गैलेरी को सत्यम शिवम सुंदरम् की प्रेरणा जगाने वाला केन्द्र बताते हुग ज्ञान, भक्ति एवं कर्म की त्रिवेणी बताया।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का जिला डीडवाना एकत्रीकरण कार्यक्रम मंगलवार को जैन विश्व भारती स्थित सुधर्मा सभा में हुआ। समारोह में स्वयसेवकों को संबोधित करते हुए सर संघचालक मोहनराव भागवत ने कहा आजादी के 60 वर्ष पूरे होने के बाद ही अपूर्णता की टीस हमारे मन में है। आपसी भेदभाव, भ्रष्टाचार, आतंकवाद जैसी समस्याओं के चलते हम गुलामी से मुक्त नहीं हो पाए हैं, इसका कारण भी स्वयं हम ही हैं।

विश्व गुरु कहलाने वाला भारत देश पिछड़ता जा रहा है। हम परिवर्तन करना चाहते है विकसित बनना चाहते हैं, लेकिन जो वास्तविक रूप से परिवर्तन होना चाहिए वो नहीं हुआ है। इन समस्याओं से निपटने क लिए सबको संगठित होकर एक ऐसे समाज की स्थापना करनी होगी, जो उपदेश कम और उदाहरण ज्यादा दे। भागवत ने वर्तमान समस्याओं को उठाते हुए कहा कि गरीबी बढ़ रही है, मंहगाई बढ़ रही है, बेरोजगारी बढ़ रही है इन सब पर लोग घरों में बैठकर चिंता करते हैं, लेकिन बाहर कोई नहीं निकलता। घर से बाहर निकलेंगे ता पता चलेगा कि आप जैसे चिंता करने वाले कितने हैं।

उन्होंने कहा कि सबसे पहले हमें अपने निजी स्वार्थों का त्याग करना होगा। रोजाना एक घंटे का समय देशहित के लिए निकालने का अभ्यास करें, देने का भाव जागृत करें। तन-मन व जीवन देश के प्रति समर्पित कर दें। इस तरह का आचरण कर हम देश में व्याप्त भययुक्त वातावरण को समाप्त कर एक नए समाज की स्थापना कर सकते है। इसलिए आवश्यक है कि सभी अपने आप में परिवर्तन लाएं, इससे दुनिया स्वतः ही परिवर्तित हो जाएगी। सभी भारत वासियों को अपना मानना और देश के कण-कण से प्यार करना सीखो। कार्यक्रम का शुभारंभ संघ घोष के साथ ध्वजारोहण से हुआ। कार्यक्रम में स्वयंसेवकों ने एक साथ मिलकर त्रिलोकी रो नाथ अठै खुद बण्यो गवाळो रे गीत का संगान किया। श्यामसुंदर रांधड़ ने अतिथियों का परिचय करवाया। इस अवसरर पर सैकड़ों स्वयं सेवक उपस्थित थे।

संघ के मायने में अहिंसा

मोहनराव भागवत ने अहिंसा के मायने बताते हुए कहा कि हम शारीरिक प्रशिक्षण प्रदान करते हैं लेकिन इसका तात्पर्य हिंसा से नहीं है। हम अपनी संस्कृति के अनुरूप अहिंसा पर उतना ही बल देते हैं। उन्होंने कहा कि दुनिया इतनी सरल नहीं है। हम लड़ना नहीं चाहते लेकिन देश की सुरक्षा-सम्मान के लिए हमें लड़ना ही होगा। देश को दुष्टों के कपट जाल से बचाने के लिए लड़ना हिंसा का एक अलग रूप है। धर्म के लिए युद्ध हर युग में हुआ है और यह कदापि अनुचित नहीं है।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के जिला एकत्रीकरण कार्यक्रम को संबोधित करते हुए युवाचार्य महाश्रमण ने कहा कि जहां परिवार की बात आती है वहीं निजी स्वार्थ गौण हो जाता है। जहां समाज की बात आती है। वहां परिवार गौण हो जाता है। जहां नगर की बात आती है। वहां समाज गौण हो जाता है। इसी तरह राष्ट्रहित की बात पर प्रदेश तक गौण हो जाता है उन्होंने कहा कि व्यक्ति में त्याग व बलिदान की भावना होनी चाहिए। जो व्यक्ति स्वार्थ का त्याग कर सकता है, वह राष्ट्र की सेवा कर सकता है।

सुखी एवं सामंजस्यपूर्ण परिवार

लाडनूं, २५ जुलाई। आचार्य महाप्रज्ञ के सान्निध्य में एवं जैन विश्वभारती के तत्त्वावधान में 'सुखी एवं सामंजस्यपूर्ण परिवार' विषय पर राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन अहिंसा भवन में किया गया इस संवाद में अनेक विश्वविद्यालयों के विभागाध्यक्ष एवं प्रोफेसर, न्यायाधीश, परिवारों के लिए कार्य कर रहे कार्यकर्ता एवं मीडिया के लोगों ने भाग लिया। प्रातःकालीन एवं मध्यकालीन सत्र में फैमिली कोर्ट के सेवानिवृत्त न्यायाधीश के. के. सहलोत, कुरुक्षेत्र विश्व-विद्यालय के प्रो. आर. एस. यादव, मगध विश्वविद्यालय के प्रो. नलिन शास्त्री, काशी विद्यापीठ के प्रो. आर. पी. द्विवेदी, हिमाचल विश्वविद्यालय के प्रो. के. सी. अग्निहोत्री, गढ़वाल विश्वविद्यालय के प्रो. हिमांशु बारोई, डॉ. वंदन भटनागर (जयपुर) कुलपति समणी मंगलप्रज्ञाजी, समणी नियोजिका मधुरप्रज्ञा, मुख्य नियोजिका साध्वी विश्रुतविभा, साध्वी कल्पलता, प्रो. मुनि महेन्द्रकुमार, मुनि किशनलाल, मुनि सुखलाल इत्यादि की चर्चा-परिचर्चा में सहभागिता रही।

युवाचार्य महाश्रमण ने अपने उद्बोधन में पारिवारिक शांति एवं सौहार्द के उपायों की विशद चर्चा करते हुए कहा 'दूसरों का हित चिंतन कर और अनाग्रही दृष्टिकोण का विकास कर व्यक्ति सुखी एवं सामंजस्यपूर्ण परिवार की नींव रख सकता है।'

उद्घाटन सत्र को संबोधित करते हुए आचार्य महाप्रज्ञ ने अपने उद्बोधन में कहा 'सामान्यतया बड़ी समस्याओं के समाधान की दिशा में प्रयत्न होते हैं। यदि छोटी समस्याओं पर ध्यान केन्द्रित कर उनके समाधान की दिशा में प्रयत्न किया जाए तो बड़ी समस्याओं का समाधान स्वतः हो जाएगा। पारिवारिक सुख एवं सामंजस्य के लिए शारीरिक, मानसिक और भावात्मक स्वास्थ्य की अपेक्षा है। पारिवारिक सौहार्द के लिए जरूरी है बालपीढ़ी का निर्माण करने वाली पीढ़ी में परिवर्तन हो। बच्चों का निर्माण करने वाली पीढ़ी यदि स्वयं संस्कारित एवं मूल्यों से ओतप्रोत होगी तो वह शुभ भविष्य का निर्माण कर सकेगी।'

जैन विश्वभारती द्वारा आयोजित इस राष्ट्रीय संवाद का संयोजन डॉ. बच्छराज दूगड़ ने किया। आगत अतिथियों का स्वागत अध्यक्ष सुरेन्द्र चोरड़िया एवं आभार ज्ञापन रणजीतसिंह कोठारी ने किया। पारिवारिक शांति एवं सौहार्द पर केन्द्रित यह परिचर्चा बहुत सार्थक और उपयोगी रही।

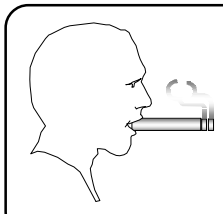

आपका मुँह
ऐश-ट्रे या कूड़ादान
नहीं

पुरुषार्थ के बिना फल नहीं

लाड़नूं। भरतीय दर्शनों में, भारतीय विचारें में कर्मवाद, आत्मवाद, मोक्षवाद, स्वर्ग-नर्कवाद, पुनर्जन्मवाद एवं भाग्यवाद आदि प्रचलित हैं। उक्त विचार युवाचार्य महाश्रमण ने जैन विश्व भारती उपासक एवं प्रेक्षाध्यान शिविर के संभागियों को सम्बोधित करते हुए व्यक्त किये।

उन्होंने कहा आत्मवाद है तो कर्मवाद का मूल्य है। आत्मा नहीं हैं तो कर्मवाद का कोई महत्त्व नहीं है। यह सभी धर्मों की अवधारणा है। यदि साधक या उपासक कोई भी कर्मवाद के सिद्धान्त से भलीभांति परिचित होना चाहता है तो उसे पण्णवणा के 23 वें अध्याय से 27 वें अध्याय का गहन अध्याय करना चाहिए। पण्णवणा में जैन धर्म के अनुसार कर्मवाद को बखूबी समझाया गया है।

युवाचार्य महाश्रमण ने आगे कहा संसार के प्रत्येक प्राणी के साथ कर्म जुड़ा हुआ है। प्राणी कोई भी प्रवृत्ति करता है तो वह कर्म ही है। कर्म को आठ भागों में बांटा गया है। जिनमें से चार घाति कर्म एवं चार अघाति कर्म हैं। घाति कर्म पाप बंध के लिए भागीदार बनते हैं वहीं अघाति कर्म पुण्य एवं पाप दोनों के भागी बन सकते हैं।

उन्होंने प्राणी के कर्म को समझाते हुए कहा कि अघाति कर्म से खतरा नहीं है। अधिक खतरा घाति कर्म से है। जिसमें मुख्य है मोहनीय कर्म। मानवजन को चाहिए कि वे घाति कर्म की क्रिया से बचें जिससे पाप कर्म से बचा जा सकता है। कर्म का तात्पर्य पुरुषार्थ से है। पुरुषार्थ जीवन की आवश्यकता है। पुरुषार्थ एवं भाग्य दोंनों एक-दूसरे के पूरक हैं। लेकिन केवल भाग्य के भरोसे बैठना उचित नहीं है। भाग्य भी तभी साथ देगा जब पुरुषार्थ होगा। पुरुषार्थ के बिना फल नहीं मिलता। भाग्य से केवल पुरुषार्थ का सार्थक फल मिलता है। पुरुषार्थ एवं भाग्य के योग से ही घटना घटित होती है। व्यक्ति को चाहिए कि अपने पुरुषार्थ से अपने भाग्य के फल को बदलकर तथा भाग्य के साम्य योग से अपने पुरुषार्थ को अधिक फलदायी बनाने का अभ्यास करें।

बाल संस्कार निर्माण शिविर

औरंगाबाद। समणी निर्देशिका परिमलप्रज्ञा के सान्निध्य में एक दिवसीय ज्ञानशाला शिविर का आयोजन किया गया। इसमें 60 बच्चों ने भाग लिया। समणी निर्देशिका परिमलप्रज्ञा ने कहा अगर बच्चों की संस्कार रूपी नीवं सुदृढ़ होगी तब उनका भविष्य उज्जवल होगा। बच्चों के सुचारु रूप से निर्माण के लिए संकल्प बल, मनोबल, मंत्रबल का कवच बनाना जरूरी है। समणी रश्मिप्रज्ञा ने नए-नए प्रयोगों द्वारा संस्कारों का जागरण व बच्चों के भीतर तत्व के प्रति कैसे जागृति हो इसकी जानकारी दी। समणी गौतमप्रज्ञा ने बच्चों को मैमोरी बढ़ाने के सूत्र सिखाये। समणी सुमनप्रज्ञा ने विकास के लिए समर्पण व विनम्रता की आवश्यकता बतायी।

इस अवसर पर बच्चों ने संगीत व कला की अच्छे ढंग से प्रस्तुति दी। जिसमें 50 बच्चों ने भाग लिया एवं कलाकृति को देखने के लिए जनता उमड़ रही थी। शिविर के समापन पर समणी निर्देशिका परिमलप्रज्ञा ने कहा बच्चों का जीवन सफेद कागज के तुल्य है। जिस पर हम जो कुछ लिखना चाहे लिखा जा सकता है। कार्यक्रम की सफलता में प्रशिक्षक माया मुथा, सीमा सुराणा, मीना सेठिया, मयूरी सुराणा, तारा सुरणा, सुधीर बांठिया का सराहनीय श्रम रहा।

अणुव्रत समिति द्वारा हृदय रोग चिकित्सा शिविर

भिवानी, 25 जुलाई। अणुव्रत समिति भिवानी द्वारा स्थानीय प्रेक्षा विहार में एक विशाल निःशुल्क हृदय रोग चिकित्सा शिविर का आयोजन किया गया। शिविर का शुभारंभ रघुबीर जैन एवं जगतार सिंह संधु द्वारा संयुक्त रूप से किया गया। विशिष्ट अतिथि के तौर पर भाजपा नेता घनश्याम दास सर्राफ एवं सम्मानित अतिथि के रूप में हरियाणा प्रादेशिक अणुव्रत समिति के अध्यक्ष प्रो. देवेन्द्र जैन, पद्म चन्द जैन, रामचन्द्र सिंह सिविल सर्जन भिवानी तथा घीसाराम जैन उपस्थित थे।

साध्वी जिनबाला ने अपने संबोधन में कहा स्वस्थ जीवन शैली तथा स्वस्थ विचारों से बीमारियों से बचा जा सकता है। साध्वीश्री ने उपस्थित लोगों से अणुव्रत के नियमों पर चलने का आह्वान करते हुए कहा कि अणुव्रत की आचार संहिता में सभी समस्याओं का समाधान निहित है। साध्वी कोमलयशा ने अणुव्रत गीत का संगान किया तथा साध्वी कोमलप्रभा ने हृदयरोग के बचाव से संबंधित प्रयोग करवाये।

समिति के अध्यक्ष डॉ. जे.बी. गुप्ता ने हृदय रोग के कारण और बचाव पर जानकारी दी। जगतार सिंधु ने कहा अणुव्रत समिति भिवानी द्वारा किये जा रहे सेवाकार्य सराहनीय हैं। प्रो. देवेन्द्र जैन एवं सुरेन्द्र जैन एडवोकेट ने समिति द्वारा चलाए जा रहे प्रकल्पों को प्रदेश भर में अनुकरणीय बताया। समिति के अध्यक्ष डॉ. जे.बी. गुप्ता ने बताया कि समिति द्वारा चिकित्सा शिविर, नशामुक्ति अभियान तथा भ्रूणहत्या को रोकने जैसे कार्यक्रम सघन रूप से जारी रहेंगे। कार्यक्रम का संयोजन समिति के मंत्री रमेश बंसल ने किया।

शिविर में एस्कोर्ट हृदय रोग विशेषज्ञ चिकित्सक डॉ. सुरेन्द्र यादव, डॉ. निलेश खंडेलवाल तथा डॉ. प्रगट सिंह ने 205 मरीजों का परीक्षण किया। मरीजों की ई.सी.जी. एवं इकोकॉर्डियोग्राफी निःशुल्क की गई एवं दवाइयां डॉ. जे.बी. गुप्ता अस्पताल के सौजन्य से मुफ्त दी गई। मरीजों की पूर्व जांच में डॉ. जे.बी. गुप्ता, डॉ. वी. के. चुघ, डॉ. कर्णपूनिया, डॉ. रघुबीर सिंह, डॉ. नीरज मित्तल तथा डॉ. अशोक सांगवान ने अपनी सेवाएं दी। समिति द्वारा इस अवसर पर कुलदीप दलाल, नीलाभ गुप्ता तथा शालू जैन को उनकी विशेष उपलब्धियों पर प्रशस्ति-पत्र, स्मृति चिह्न एवं अणुव्रत आचार संहिता देकर सम्मानित किया गया। ज्ञानशाला एवं श्रीराम पाठशाला के बच्चों द्वारा किये गये गीत के संगान ने सबका दिल जीत लिया। समिति द्वारा सभी चिकित्सकों व अतिथियों का अभिनंदन किया गया। इस शिविर के आयोजन में सभा, महिला मंडल, युवक परिषद एवं लायंस क्लब तोशाम की सहभागिता रही।

इस अवसर पर सुरेन्द्र जैन एडवोकेट, लाजपतराय जैन, नन्दकुमार जैन, डॉ. रमेश धनखड़, देवराज तोशामिया, प्रो. संजय गोयल, महंत जगन्नाथ, गुलाब सिंह, डॉ. नीलम गुप्ता, कालीचरण केसान, उर्मिला जैन, गिरधारीलाल, शिखा जैन, माणिकचंद नाहटा, आनन्द जैन, मधु जैन, विकास जैन, भरत सोलंकी, सुभाष जैन, शालू जैन, कमलेश जैन, गौरव जैन, विशाल जैन, अंकुर जैन, टेकचंद जैन, सारिका जैन तथा मुकेश जैन सहित अनेक गणमान्य लोग उपस्थित थे।

राज. प्रा. अणुव्रत समिति का वार्षिक सम्मेलन

राजसमन्द, 1 अगस्त। राजस्थान प्रादेशिक अणुव्रत समिति का वार्षिक सम्मेलन अणुव्रत विश्व भारती परिसर राजसमंद में अणुव्रत महासमिति के अध्यक्ष डॉ. महेन्द्र कर्णावट के मुख्य आतिथ्य में एवं राजस्थान प्रादेशिक अणुव्रत समिति के अध्यक्ष जी.एल. नाहर की अध्यक्षता में आयोजित हुआ। विशिष्ट अतिथि अणुविभा के संस्थापक मोहन भाई जैन थे।

सम्मेलन का शुभारंभ अणुव्रत गीत के संगान से हुआ। प्रदेश भर की अणुव्रत समितियों के प्रतिनिधियों ने वर्षभर में किये गये कार्यों की संक्षिप्त जानकारी दी। कार्यक्रम में प्रांतीय प्रादेशिक अणुव्रत समिति के मंत्री पंचशील जैन ने प्रांतीय कार्यकारिणी के प्रगति प्रतिवेदन का वाचन किया, जिसका सदन ने अर्हम् ध्वनि के साथ अनुमोदन किया।

इस अवसर पर अणुव्रत आंदोलन को गति देने वाली इकाइयों को प्रोत्साहन स्वरूप सम्मानित किया गया। नैतिक चेतना को जगाकर समाज को उन्नति के मार्ग पर ले जाने वाला आचार्य तुलसी का दिव्य संकल्प 'अणुव्रत आंदोलन' जन-जन के बीच पहुंचे और इसका लाभ समाज को मिले इसी भावना को पुष्ट करने के लिए हर समाज को इससे जोड़ने की जरूरत को सिद्दत से महसूस किया गया। इसी क्रम में शाहपुरा जिला भीलवाड़ा में शीघ्र ही अणुव्रत समिति का गठन किया जाएगा।

एल.एल. गांधी के प्रस्ताव के अनुमोदन के साथ निर्वाचन अधिकारी धर्मीचन्द जैन ने संपत सामसुखा को राजस्थान प्रादेशिक अणुव्रत समिति का अध्यक्ष निर्वाचित घोषित किया।

सम्पत शामसुखा का स्वागत करते हुए सभी अणुव्रत समितियों ने उन्हें हार्दिक बधाई दी। सम्पत शामसुखा ने अपने अध्यक्षीय उद्बोधन में आचार्य महाप्रज्ञ, युवाचार्य महाश्रमण को भावपूर्ण नमन कर मंच से घोषणा की कि नैतिकता का पाठ दूसरों को पढ़ाने की अपेक्षा हमें अपने आप में अपने कार्यस्थल पर नैतिक होने के प्रमाण देने से ही इसका दिव्य व भव्य रूप दूसरों के जहन में उतरने योग्य हो सकेगा। हमारे ऐसे प्रयास ही गुरुवर के सपनों को साकार करेंगे।

गुजरात राज्य निबन्ध प्रतियोगिता

अहमदाबाद, 10 जुलाई। समाज में नैतिकता, संयम, पर्यावरण शुद्धि, व्यसनमुक्ति एवं अहिंसा के प्रति जनचेतना जाग्रत करने के उद्देश्य से गुजरात राज्य अणुव्रत समिति द्वारा आगामी माह सितंबर 2009 में "गुजरात राज्य निबन्ध प्रतियोगिता का आयोजन किया जा रहा है। कार्यक्रम की घोषणा करते हुए गुजरात राज्य अणुव्रत समिति के अध्यक्ष जवेरीलाल संकलेचा ने कहा आचार्य तुलसी व्यक्ति नहीं संस्कृति थे। वे आध्यात्मिक जगत के उज्ज्वल नक्षत्र, कुशल मार्गदृष्टा एवं समाज सुधारक थे। उन्होंने राष्ट्रीय समस्याओं के समाधान हेतु अणुव्रत आंदोलन का प्रवर्तन किया। इस अवसर पर कार्यक्रम के संयोजक सुरेन्द्र लूणिया, संतोष सालेचा, समिति के मंत्री अशोक दूगड़ सहित महानुभाव उपस्थित थे। कार्यक्रम इस प्रकार है

विषय : राष्ट्रीय समस्याओं के समाधान में अणुव्रत की भूमिका
शब्द सीमा 300 में लिखकर दिनांक 02-09-2009 तक भिजवाएं

पता : गुजरात राज्य अणुव्रत समिति
तेरापंथ भवन, आचार्य तुलसी सर्किल, शाहीबाग, अहमदाबाद - 380004
दूरभाष : 22867682, मो. : 9376227360, 9727382182

विद्यालय में अणुव्रत कार्यक्रम

हिरियूर, 5 अगस्त। हिरियूर के पास हुडवली गांव के जवाहरलाल नेहरू नवोदय विद्यालय में समणी निर्देशिका भावितप्रज्ञा के सान्निध्य में अणुव्रत समिति हिरियूर द्वारा अणुव्रत कार्यक्रम रखा गया। इसमें 450 बालक-बालिकाओं एवं 60 शिक्षक-शिक्षिकाओं ने भाग लिया। समणी निर्देशिका भावितप्रज्ञा ने बच्चों एवं अध्यापकों को अणुव्रत के नियमों की विस्तृत जानकारी दी एवं बच्चों को छोटी-छोटी कथाओं द्वारा समझाया गया तथा प्राणायाम के प्रयोग भी कराए गए।

अणुव्रत समिति हिरियूर के अध्यक्ष एम नागराज ने कन्नड भाषा में आचार्य तुलसी के जीवन पर प्रकाश डालते हुए अणुव्रत के नियमों को अपने जीवन में अपनाने के लिए आग्रह किया। अणुव्रत महासमिति कार्यसमिति के सदस्य धनराज तातेड़ ने अध्यापकों को नैतिक व प्रामाणिक रहते हुए अपने कर्त्तव्य का पालन करने की सलाह दी एवं बच्चों को अच्छा आचरण करने व अच्छे नागरिक बनने का आह्वान किया। कार्यक्रम में हिरियूर अणुव्रत समिति के सदस्य मोहनलाल संकलेचा, मांगीलाल तातेड़, डूंगरचंद सालेचा, देवराज चौपड़ा, जोगराज उपस्थित थे। बच्चे एवं अध्यापक बहुत प्रभावित हुए।

कच्चे धागों का बंधन

जयपुर, 5 अगस्त। मुनि विनयकुमार 'आलोक' ने प्रदेशवासियों को रक्षा बंधन के त्यौहार की हार्दिक बधाई और शुभकामना देते हुए कहा भाई-बहन के अटूट रिश्ते का प्रतीक त्यौहार ''रक्षा बंधन'' भारतीय संस्कृति की पहचान है। रक्षा बंधन भाई और बहन को एक दूसरे की रक्षा की प्रतिबद्धता को दोहराना है। वर्तमान में इस त्यौहार की महत्ता अधिक बढ़ गई है। हमें निजी रिश्तों से आगे बढ़कर समाज, देश और संस्कृति की रक्षा के लिए संकल्पबद्ध होना चाहिए। रक्षा बंधन का त्यौहार आपसी रिश्तों में प्रेम और भाईचारे की भावना के साथ एक-दूसरे के प्रति सहिष्णुता और त्याग करने की भावना भी सिखाता है। यह पर्व जैन समाज से भी जुड़ा हुआ है। अकल्पनाचार्य के 700 शिष्यों पर वल्लिक राजा द्वारा उपसर्ग किया गया था। उसके बाद जैन मुनियों का उपसर्ग दूर किया गया तभी प्रारंभ हुआ ऐसा माना जाता है। यह पर्व अगाध स्नेह का प्रतीक है। त्यौहार हमें जीवन में कर्त्तव्य, संकल्प एवं प्रतिबद्धताओं के लिए सदैव तत्पर रहने की प्रेरणा देता है। हमें समाज हित की रक्षा, शान्ति, प्रेम सामाजिक समरसता में योगदान का संकल्प लेना चाहिए।

मुनिश्री ने विषय को मोड़ देते हुए कहा रक्षा बंधन का अवसर है लेकिन 'दूधो नहाओ, पूतों फलो', के आशीर्वाद को ही सच्चा मानने वाले कितने ही आंगन आज सूने होंगे। जहां केवल लड़कों का प्रवेश मान्य है, उस परिवार के बेटे आज अपनी सूनी कलाई लिए घूमेंगे। जब 1000 लड़कों के बीच 850 लड़कियों का लिंगानुपात है, तो कई कलाइयां तो सूनी होंगी ही। इनके आंगन कितने सूने होंगे, न झूले न मेहंदी, न खिलखिलाहटें न राखी, न त्यौहार न रौनकें। केवल रक्षा सूत्र ही नहीं, इन आंगनों का सन्नाटा जो जीवन का अंग है। बेटों के ब्याह-शादी में मंडप लगाने वाला बहनोई न होगा और न ही द्वार रोकने वाली बहन होगी। जो कन्या भ्रूण हत्या करते हैं, वे बेटियों के लिए नहीं, सावन के लिए द्वार बन्द कर देते हैं।

भाई-बहन के पवित्र रिश्ते का पर्व

अहमदाबाद। साध्वी अणिमाश्री ने रक्षा बंधन के पवित्र पर्व पर विशाल परिषद् को संबोधित करते हुए कहा सांस्कृतिक पर्वों में रक्षा बंधन का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह पर्व भाई-बहन के पवित्र रिश्तों का पर्व है। भाई-बहन के आपसी विश्वास, सहयोग, स्नेह, प्रेम को बढ़ाने वाला है। उन रिश्तों को फौलादी रूप देने वाला है। जब-जब बहनों ने भाई की कलाई पर राखी बांधी तो अपेक्षा की कि भाई इन हाथों से कोई कुकृत्य न कर दे। यह हाथ हमेशा सद्कार्यों की ओर ही बढ़ते रहे। ऐसी बहन की सदियों से भावना रही है। लेकिन आज अर्थ की अंधी दौड़ में ये रिश्ते चरमरा रहे हैं। भाई-बहन के पवित्र रिश्तों में भी दरार आ रही है, जीवन में कटुता घुलती जा रही है।

साध्वीश्री ने आगे कहा आज अतीत के धरातल पर खड़े होकर सिंहावलोकन करें, कहीं हमारे रिश्तों में खटास तो पैदा नहीं हो गया है। यह खटास, यह कटुता, चहकती-महकती, हंसती-खिलती जिंदगी में कटुता का जहर घोल देगी। आवेश, आवेग हमारी आत्मा को दूषित कर रहे हैं। आज के दिन हम अपने आवेश व आवेग को शांत करने का संकल्प लें। कषायों के अल्पीकरण की ओर अग्रसर हों तभी हम अपनी अर्थात् अपनी आत्मा की रक्षा कर पाएंगे।

इस अवसर पर साध्वी कर्णिकाश्री, साध्वी सुधाप्रभा, साध्वी सुलसाश्री एवं साध्वी मैत्रीप्रभा ने भावपूर्ण गीत का संगान किया। अनेक भाई-बहनों ने साध्वीश्री से अध्यात्म की राखी बंधवाई।

प्रेक्षाध्यान और मधुमेह निवारण कार्यशाला

औरंगाबाद, 2 अगस्त। समणी निर्देशिका परिमलप्रज्ञा के सान्निध्य में महिला मंडल के तत्वावधान में ''प्रेक्षाध्यान और मधुमेह निवारण'' विषयक कार्यशाला का आयोजन किया गया। इसमें स्थानीय भाई-बहनों ने बड़ी संख्या में भाग लिया। डॉ. अर्चना सारडा ने बहनों को संबोधित करते हुए 'स्वादु पिण्डु' जो इन्सुलिन बनाता है इसकी विस्तृत जानकारी दी। बहनों में जागरूकता कैसे बढ़े? संतुलित जीवन शैली कैसी हो? इस पर उन्होंने 5 बिन्दुओं की विस्तार से चर्चा की। आहार, व्यायाम, व्यसन, समय और दृष्टिकोण। व्यसन में मधुमेह का मुख्य कारण है तम्बाकू। साथ ही बच्चे न होना, पैरों का सुन होना भी तम्बाकू का सेवन ही है। डॉ. अर्चना सारडा ने बहनों को नियमित व्यायाम करने की प्रेरणा दी।

समणी निर्देशिका परिमलप्रज्ञा ने अपने संबोधन में कहा मधुमेह एक लाइलाज बिमारी है, इसके कारण दूसरी बीमारियों को भी निमंत्रण मिलता है। इस बीमारी को प्रेक्षाध्यान के प्रयोग, योगमुद्रा, प्राणायाम, सर्वांगासन, उत्तानपाद आसन, मत्स्यासन आदि के द्वारा नियंत्रित किया जा सकता है। प्रसन्नता के द्वारा आधी बीमारी यूं ही दूर हो जाती है।

महिला मंडल की अध्यक्षा रूपा धोका ने डॉ. अर्चना सारडा का परिचय देते हुए उनका स्वागत किया। डॉ. अर्चना सारडा सेंटर ऑफ डायबिटीज 1998 में चालू किया गया। एम.बी.बी.एस. दिल्ली एवं एम.डी. मुंबई से किया। उडान संस्था में कार्यरत हैं। इस संस्था में 150 बच्चों का डायबिटीज का इलाज किया जा रहा है। जिसमें 50 प्रतिशत इन्सुलिन संस्थान द्वारा मुफ्त दिया जाता है। यह महाराष्ट्र में पहली संस्था औरंगाबाद में है। वासंती देवी सुराणा ने पुस्तक भेंट की। संचालन प्रमिला डोसी ने किया।

चरित्र निर्माण का आधार है अणुव्रत

पाली, 31 जुलाई। साध्वी सुदर्शना के सान्निध्य में मण्डिया रोड सभा भवन में ''चरित्र निर्माण का आधार अणुव्रत'' विषयक संगोष्ठी का आयोजन हुआ। तेयुप द्वारा संचालित निःशुल्क होमियोपैथिक चिकित्साल्य का शुभारंभ जिला कलेक्टर डॉ. पृथ्वीराज एवं उपाधीक्षक पाली प्रवीण जैन और डॉ. देवेन्द्रनाथ भारद्वाज द्वारा किया गया। इस चिकित्साल्य का सौजन्य अभयराज, जीतमल, फतेहराज, पटावरी द्वारा किया गया।

साध्वी सुदर्शना ने कहा अणुव्रत आदमी को अच्छा आदमी बनाने का कारखाना है। अणुव्रत मैत्री, करुणा, एकता, शान्ति, आध्यात्मिक और नैतिक मूल्यों का जागरण है। अणुव्रत जीवन की सम्पति को सुरक्षित रखता है। कार्यक्रम में जिला कलेक्टर डॉ. पृथ्वीराज ने भी अणुव्रत पर अपने विचार रखते हुए कहा पूरे भारत वर्ष में अणुव्रत फैल रहा है और इस अभियान से पूर्व राष्ट्रपति डॉ. ए. पी.जे. अब्दुल कलाम भी प्रभावित हुए हैं। डॉ. कलाम ने आचार्य महाप्रज्ञ के साथ मिलकर एक पुस्तक भी लिखी है। वास्तव में अणुव्रत को अपनाकर व्यक्ति अपने जीवन को सहज रूप से आनन्दमय एवं सुखी बना सकता है।

इस अवसर पर प्रवीण जैन, हुगर चौपड़ा, अनिल कुमार भंसाली, हेमलता सेमलानी, अणुव्रत समिति पाली के मंत्री सुरेन्द्र दूगड़, बसन्त सोनी ने अपने विचार रखे। संचालन महेन्द्र चौपड़ा ने किया।

सफलता का बोधपाठ है समय प्रबंधन

कोलकाता, 29 जुलाई। साध्वी कनकश्री के सान्निध्य में कोलकाता महिला मंडल द्वारा महासभा प्रज्ञा समवसरण में एक दिवसीय प्रेक्षाध्यान शिविर का आयोजन किया गया। साध्वीश्री ने शिविर को संबोधित करते हुए कहा प्रेक्षाध्यान पद्धति का महत्त्वपूर्ण अभ्यास बिंदु है जागरूकता। जागरूकता का अर्थ है प्रत्येक क्षण को, प्रत्येक श्वांस को जागरूकता पूर्वक जीना। जो वर्तमान क्षण के प्रति जागरूक हो जाता है, वह क्षण को उत्सव बना लेता है। आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व युग पुरुष महावीर ने जो समय प्रबंधन के मूल्यवान सूत्र दिये वे अत्यंत दुर्लभ, वैज्ञानिक और मननीय हैं। ध्यान योग, स्वाध्याय के सतत अभ्यास से परमात्मतत्त्व प्रकट हो सकता है। सर्वांगीण प्रवृत्तियों के सम्यक् संचालन हेतु जरूरी है समय का सदुपयोग करें। उचित समय पर उचित काम करने की आदत डालें। दूरदर्शिता का विकास करें। समय को पहचानें और उसका सम्यक् नियोजन करें। इससे आपको तनाव नहीं सताएगा।

साध्वी मधुलता ने कहा समय मनुष्य की सबसे बड़ी पूंजी है। प्रत्येक घंटे के दो मिनट स्वयं के मानसिक, शारीरिक और आध्यात्मिक विकास के लिए जरूर बचाएं। साध्वीश्री ने ध्यान की उपयोगिता बताते हुए प्रेक्षाध्यान के प्रयोग कराए।

शिविर की मुख्य प्रशिक्षिका अलका सांखला ने कायोत्सर्ग, यौगिक क्रियाओं का प्रायोगिक प्रशिक्षण दिया। समय-प्रबंधन के संदर्भ में उन्होंने कहा कि गृहस्थ जीवन में बहनें अपनी दिनचर्या इस ढंग से संचालित करें कि काम अच्छा हो, समय की बचत हो, उसका उपयोग हम निजी जीवन के विकास में कर सकें। इस अवसर पर अन्य वक्ताओं ने भी अपने विचार रखे। संचालन राजकुमारी लूणिया ने किया।

प्रेक्षाध्यान अभ्यास शिविर

लुधियाना, 31 जुलाई। मुनि सुमेरमल 'लाडनूं' ने कहा व्यक्ति के जीवन में परिवर्तन तब होता है जब उसके जीवन में धर्म उतरता है। मात्र धर्म की बात पढ़ना, धर्म की बात सुनना ही पर्याप्त नहीं है। मात्र धर्म का उपदेश देना भी महत्त्वपूर्ण नहीं है। महत्त्वपूर्ण तो यह है कि धर्म की बातें जीवन में कितनी उतरीं। मुनिश्री सभा भवन इकबालगंज रोड पर सभा, तेयुप द्वारा आयोजित 'प्रेक्षाध्यान अभ्यास शिविर' को संबोधित कर रहे थे।

मुनिश्री ने कहा कि आचार्य महाप्रज्ञ ने आम आदमी के जीवन परिवर्तन की दृष्टि से प्रेक्षाध्यान पद्धति विकसित की। प्रेक्षाध्यान के प्रयोगों से बदलाव आता है। तनाव से मुक्ति मिलती है। व्यक्ति का जीवन सहज एवं शांत बन जाता है।

मुनि उदितकुमार ने शिविर में प्रेक्षाध्यान के विविध प्रयोग करवाए तथा तनाव मुक्ति का महत्त्वपूर्ण प्रयोग 'कायोत्सर्ग' का अभ्यास कराया। मुनिश्री ने उपस्थित संभागियों को प्रेक्षाध्यान का प्रारंभिक प्रशिक्षण भी दिया। मुनि विजयकुमार ने गीत का संगान किया। मुनि प्रशमकुमार, संजय जैन के प्रासंगिक वक्तव्य हुए। शिविर व्यवस्था में प्रदीप दूगड़, कुलदीप सुराणा, देवेन्द्र जैन का सराहनीय श्रम रहा।

जीवन के रहस्यों को जानने का मार्ग

अहमदाबाद। साध्वी अणिमाश्री के सान्निध्य में तेयुप के तत्वावधान में प्रेक्षाध्यान शिविर का आयोजन हुआ। शिविर में सैकड़ों भाई-बहनों ने भाग लिया। साध्वीश्री ने भाई-बहनों को संबोधित करते हुए कहा मनुष्य एक मननशील प्राणी है। उसे विकसित मस्तिष्क मिला है। विवेक और प्रज्ञा का युगपत योग मिला है। यद्यपि जीवन और जगत से जुड़ी विभिन्न समस्याओं को समाहित करने के अनेक उपक्रम हैं, अनेक पथ हैं। उन्हें ऐसा लग रहा है कि जीवन के गहरे रहस्यों को जानने और समझने का एकमात्र निरापद पथ है ध्यान। ध्यान वह सोपान है, जो जीवन में सार्थकता के सुमनों को खिला सकता है। ध्यान जीवन के रूपांतरण का विज्ञान है। ध्यान के द्वारा जीवन में सृजन को यथार्थ रूप दिया जा सकता है। ध्यान अपने आपको बदलने की सशक्त प्रक्रिया है। ध्यान जीवन को समग्रता दे सकता है। ध्यान के दीर्घकालिक और नियमित अभ्यास से जागरूकता को विकसित किया जा सकता है और एकाग्रता को बढ़ाया जा सकता है।

कार्यक्रम में सोहनराज भरसारिया एवं धनराज छाजेड़ ने व्यवस्थित प्रशिक्षण दिया। चैनरूप डोसी ने अपने विचार रखे। संचालन प्रकाश भरसारिया ने किया।

एक दिवसीय प्रेक्षाध्यान कार्यशाला

तोशाम, 26 जुलाई। साध्वी कुंथुश्री के सान्निध्य में प्रेक्षा प्रशिक्षक लाजपतराय जैन के निर्देशन में एक दिवसीय प्रेक्षाध्यान कार्यशाला का आयोजन सभा भवन तोशाम में किया गया। इसमें ध्यान, यौगिक क्रियाएं, आसन, प्राणायाम, ध्वनि के प्रयोग एवं दीर्घ श्वास के बारे में विस्तृत जानकारी एवं प्रयोग कराए गए। करीब 50 भाई-बहनों ने इसमें भाग लेकर स्वास्थ्य एवं अध्यात्म की नवीनतम जानकारी प्राप्त की। कार्यशाला की सफलता में साध्वी सुमंगलाश्री, अन्य कार्यकर्ताओं का सराहनीय श्रम रहा।

द्विदिवसीय प्रेक्षाध्यान शिविर

कोप्पल। समणी निर्देशिका शीलप्रज्ञा के सान्निध्य में द्विदिवसीय प्रेक्षाध्यान शिविर का आयोजन मुम्बई से समागत प्रेक्षा प्रशिक्षक पारस भाई दूगड़ एवं बिमला दूगड़ के निर्देशन में बी.बी.एम. कॉलेज के विद्यार्थियों के मध्य हुआ। इसमें लगभग 200 विद्यार्थियों ने भाग लिया।

प्रातःकालीन सत्र में ध्यान, योगासन एवं प्राणायाम के प्रयोग करवाए गए। ''ऊर्जा का ऊर्ध्वारोहण कैसे करें?'' इस विषय पर समणी शीलप्रज्ञा, पारस भाई एवं बिमला दूगड़ ने विचार रखे। तत्पश्चात कायोत्सर्ग एवं शरीर विज्ञान संबंधित जानकारी दी गयी।

मध्याह्न के सत्र में ''मोटापा : कारण एवं निवारण पर प्रशिक्षण दिया गया। प्रेक्षा प्रशिक्षक पारस भाई ने कहा कि मोटापा भी आज के युग की मूल समस्या है। बिना दवाइयों के हम मोटापा कम कर सकते हैं। इसके लिए आसन-प्राणायाम के प्रयोग आवश्यक हैं। बिमला दूगड़ ने समय प्रबंधन विषय पर अपने विचार रखे।

समणी निर्देशिका शीलप्रज्ञा ने स्वस्थ जीवन जीने के टिप्स बताये तथा श्वास के प्रयोग करवाये। पारस दूगड़ ने मुद्रा विज्ञान की जानकारी भी दी। इस द्विदिवसीय शिविर के दौरान कोप्पल एवं बाहर से समागत शिविरार्थियों ने बहुत लाभ लिया। साथ ही नयी जानकारियां प्राप्त कीं। शिविर की व्यवस्था में कोप्पल सभा एवं पारसमल जैन का सराहनीय श्रम रहा।

प्रेक्षाध्यान कार्यशाला

उदासर, 4 अगस्त। साध्वी मनोहरां के सान्निध्य में सभा भवन उदासर में आयोजित प्रेक्षाध्यान कार्यशाला को संबोधित करते हुए कहा आज विश्व अशांति और दुःख की भट्टी में जल रहा है। जन जीवन निश्चेतन हो रहा है। आज के तनाव भरे वातावरण को हटाने में प्रेक्षाध्यान रामबाण औषध है। प्रेक्षाध्यान एक आध्यात्मिक व वैज्ञानिक साधना पद्धति है। इस पद्धति से व्यक्ति तनाव मुक्त होकर मानसिक शांति व समाधि को प्राप्त करता है।

साध्वी काव्यलता ने कहा कि प्रेक्षाध्यान से चित्त निर्मल होता है और कषाय शांत होते हैं। साध्वी मृदुप्रभा ने ध्येय सूत्र, अंतर्यात्रा, दीर्घ श्वास, प्रेक्षा, कायोत्सर्ग का प्रयोग करवाते हुए कहा कि प्रेक्षाध्यान पद्धति का ध्येय है अपने को जानना। महावीर महनोत ने प्रेक्षाध्यान को स्वस्थ जीवन का आधार बताया।

व्यक्तित्व विकास कार्यशाला

श्रीडूंगरगढ़। अणुव्रत प्रभारी मुनि राकेशकुमार के सान्निध्य व मुनि सुधाकर के निर्देशन में तेयुप तथा महिला मंडल के तत्वावधान में त्रिदिवसीय व्यक्तित्व विकास कार्यशाला का आयोजन किया गया। इसमें 105 किशोरों व कन्याओं ने भाग लिया।

मुनि राकेशकुमार ने ''कैसे बढ़ाएं आत्मविश्वास'' विषय पर बोलते हुए कहा हर व्यक्ति में क्षमताओं और योग्यताओं का असीम भंडार है। बस जरूरत है उन्हें पहचानने एवं जगाने की। आज मनोविज्ञान के क्षेत्र में हीनता और भय की ग्रंथि का विवेचन तथा उन्मेषण हुआ है। अपनी क्षमताओं व संभावनाओं से परिचित होने के लिए यह बहुत बड़ी बाधा है। आत्मविश्वास की दिशा में अग्रसर होने के लिए मानसिक एकाग्रता और संकल्प बल का जागरण भी जरूरी है।

रोचक प्रतियोगिता जैन हाउजी का संचालन करते हुए मुनि सुधाकर ने कहा प्रतियोगिता ज्ञान विकास का साधन है। संयोजन निशा बोथरा व खुशबू दूगड़ ने किया।

दूसरे दिन का कार्यक्रम किशोर मंडल के मंगलाचरण से प्रारंभ हुआ। मुनि सुधाकर ने समय प्रबंधन पर बोलते हुए कहा समय के पांव नहीं पंख होते हैं। हर विद्यार्थी को समय व शक्ति का सही उपयोग करना चाहिए। समय जीवन का सार है। समय जीवन की सार्थकता है। समय को नष्ट करना स्वयं को नष्ट करना है। मुनि राकेशकुमार का मंगल उद्बोधन हुआ। संयोजन मुस्कान बरड़िया ने किया।

तृतीय दिवस का मंगलाचरण सुमित बरड़िया ने किया। मुनि राकेशकुमार ने सफलता के सूत्रों पर चर्चा करते हुए कहा विद्यार्थियों को प्रतिदिन आत्मनिरीक्षण करना चाहिए। उसके लिए 10 मिनट आंख बंद कर स्वयं को देखना एवं अपनी आदतों का निरीक्षण करना चाहिए। सम्लता के लिए मानसिक एकाग्रता, आत्मविश्वास व चरित्रबल को मुनिश्री ने जीवन में आवश्यक बताया। मुनि सुधाकर ने सफल वक्ता सफल व्यक्ति बनने हेतु वणी में मधुरता लाने की बात कही। आभार प्रकट दीपशिखा डागा ने किया। संयोजन गौरव झाबक ने किया।

अणुव्रत महासमिति द्वारा प्रकाशित अणुव्रत आंदोलन के आधार स्तंभ रहे लोककर्मियों की जीवनी प्रकाशन के क्रम में विगत तीन वर्षों में निम्न पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं

अणुव्रत के लौहपुरुष : जयचंदलाल दफ्तरी संपादक : डॉ. छगनलाल शास्त्री, डॉ. महेन्द्र कर्णावट **मूल्य : 150 रु.**

अणुव्रत महारथी : देवेन्द्र कुमार कर्णावट संपादक : डॉ. छगनलाल शास्त्री, डॉ. महेन्द्र कर्णावट **मूल्य : 300 रु.**

उक्त दोनों ग्रंथ 50 प्रतिशत रियायती मूल्य पर अणुव्रत महासमिति के दिल्ली कार्यालय से प्राप्त किये जा सकते हैं। डाक व्यय 25 रु. अतिरिक्त देय होंगे।

50% छूट

अणुव्रत साहित्य पचास प्रतिशत रियायत पर उपलब्ध

संपर्क सूत्र :

अणुव्रत महासमिति

अणुव्रत भवन, 210 दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, नई दिल्ली–110002

दूरभाष : (011) 23233345 फैक्स : (011) 23239963

E-mail: anuvrat_mahasamiti@yahoo.com

कैंसर : कारण एवं निवारण कार्यशाला

मुंबई। साध्वी कनकरेखा के सान्निध्य में घाटकोपर सभा भवन में ''कैंसर : कारण एवं निवारण'' विषयक कार्यशाला का आयोजन हुआ। इसमें डॉ. प्रकाश डूंगरवाल ने सुंदर एवं सरल तरीके से स्वास्थ्य की चर्चा की। कैंसर के कारणों की विस्तार से जानकारी देते हुए उसके निवारण के उपाय बताए। हमें विशेष रूप से किन-किन बातों की सावधानी रखनी है, इसकी भी जानकारी दी।

साध्वी कनकरेखा ने कहा हर व्यक्ति सुखी जीवन जीना चाहता है। सुख शब्द हर व्यक्ति को प्रिय लगता है। शास्त्रों में सात सुखों का वर्णन मिलता है। उसमें पहला सुख है निरोगी काया। शारीरिक-मानसिक और भावनात्मक रूप से स्वस्थ रहने के लिए सबसे पहले व्यक्ति को अपनी सोच की ओर ध्यान देना होगा। सकारात्मक सोच व्यक्ति अस्त-व्यस्त जीवन शैली को स्वस्थ बना देती है। विचारों का, चिंतन का हमारे शरीर पर गहरा असर पड़ता है। हमारे अंतःस्त्रावी ग्रंथियों के स्त्राव में परिवर्तन आता है। जैसा विचार होता है वैसा ही रसायन हमारे भीतर तैयार होता है। इसी के साथ खानपान का भी हमारे व्यवहार पर असर पड़ता है।

इस अवसर पर डॉ. अलका मिश्रा ने भी एक्युप्रेशर बिंदुओं की विस्तार से जानकारी दी। अंजु बाफणा ने अपनी भावना व्यक्त की। स्थानीय महिला मंडल ने मुख्य वक्ता डॉ. प्रकाश एवं डॉ. अलका मिश्रा का साहित्य द्वारा सम्मान किया। कार्यक्रम में मुमुद कच्छारा, जयश्री बड़ाला, विमल चोरडिया, रूपचंद चोरडिया, मुक्ता भटेरा, अर्जुन सिंघवी, सोहन जैन, यादव जैन विशेष रूप से उपस्थित थे। कार्यक्रम में 200 बहनों ने उत्साहपूर्वक भाग लिया।

निःशुल्क नेत्र चिकित्सा शिविर

राजसमंद। 'आओ चलें गांव की ओर' अभियान के तहत सातवें विजिट के अंतर्गत महिला मंडल राजसमंद की ओर से डिप्टी खेडा सराय में निःशुल्क नेत्र चिकित्सा शिविर में 278 रोगियों को निःशुल्क दवाइयां वितरण एवं परीक्षण किया गया। उपचार शिविर में डिप्टी खेड़ा, डिप्टी, सुन्दरचा, काडा-1, काड़ा-2 व भीलों की भागल के लोगों ने अपनी आंखों की जांच कराई तथा स्वास्थ्य लाभ लिया। शिविर में मोतिया बिंद के 18 मरीज पाये गये, नाकूना के 13 चश्में, गले में गांठ के त तथा सामान्य परीक्षण किये गये। बच्चों के पेट में कीड़े के लिए विशेष विद्यार्थियों को दवाई दी गयी व परामर्शक दिया गया। बालकों में सर्दी, जुकाम, बुखार, दस्त, पेट दर्द व आंखों में जलन के रोगी ज्यादा थे। संस्था सहमंत्री ललिता चपलोत ने बताया कि शिविर में डॉ. कुसुम शर्मा ने निःशुल्क सेवाएं दी।

शिविर में लाड़ मेहता, उर्मिला सोनी, सुशीला बड़ाला, ललिता चपलोत, राजूला मादरेचा, पुष्पलता मादरेचा, मंजू कावड़िया, स्कूल के प्रधानाध्यापक सुरेश कुमावत नंदलाल कुमावत, हरीश गुजर, धीरज सिंह राणावत, भरत पालीवाल प्रमुख रूप से उपस्थित थे। ग्रामवासियों में शिविर के प्रति पूर्ण उत्साह देखा गया। शिविर का समय समाप्त होने पर भी रोगी आ रहे थे। ग्रामवासियों ने डॉ. कुसुम के प्रति आभार व्यक्त करते हुए आगे भी इस प्रकार के शिविर रखने की मांग की। सुंदरचा सरपंच लक्ष्मीदेवी ने महिला मंडल के प्रति धन्यवाद व्यक्त किया। इस अवसर पर बच्चों को बिस्कुट एवं चॉकलेट भी बांटे गये।

अहिंसा एवं स्वरोजगार प्रशिक्षण जरूरी

बाढ़। अणुव्रत शिक्षक संसद द्वारा संचालित अहिंसा प्रशिक्षण केन्द्र में अहिंसा-शांति सम्मान समारोह का आयोजन किया गया। समारोह का उद्घाटन अणुव्रत शिक्षक संसद के राष्ट्रीय संयोजक भीखमचंद नखत ने किया।

भीखमचंद नखत ने सैकड़ों लोगों को संबोधित करते हुए कहा आज के वैश्विक माहौल में व्यक्ति के लिए स्वरोजगार बड़ी जरूरत बन गयी है। स्थायी शांति के लिए अहिंसा व स्वरोजगार प्रशिक्षण तथा तनाव मुक्ति के प्रयोगों की प्रासंगिकता बढ़ गयी है क्योंकि इसके बिना स्थायी शांति संभव नहीं। नखत ने उत्तर प्रदेश, बिहार और झारखंड राज्य के केन्द्रों के निरीक्षण क्रम में दो दिवसीय दौरे पर बाढ़ केन्द्र में पधारे। गरीब संभागियों को रोजगार प्रशिक्षण के लिए महेन्द्र, सुरेन्द्र कच्छारा मुंबई की तरफ से 10 सिलाई मशीनें देने की घोषणा की। उन्होंने अपनी तथा शिक्षक संसद की ओर से इस केन्द्र को आर्थिक सहायता देने की भी घोषणा की। बाढ़ केन्द्र द्वारा प्रतिवर्ष दिया जाने वाला अहिंसा-शांति सम्मान 2009 जगन्नाथ उच्च विद्यालय के वरिष्ठ शिक्षक, जीवन विज्ञान, अणुव्रत तथा साहित्य-संस्कृति के प्रति समर्पित सुरेश चन्द्र प्र. सिंह तथा बाढ़ गौरव का सम्मान आदर्श ज्ञानोदय विद्यालय के प्राचार्य प्रकाश पप्पू को प्रदान किया गया।

समारोह में एनटीपीसी बाढ़ के मंदाकिनी क्लब की अध्यक्षा कंचन सिंह मुख्य अतिथि के रूप में उपस्थित थीं। विशिष्ट अतिथि के रूप में अणुव्रत शिक्षक संसद के राज्य संयोजक नवल किशोर प्रसाद सिंह, अहिंसा प्रशिक्षण केन्द्रों के बिहार-राज्य समन्वयक तनसुखलाल बैद, संसद के प्रांतीय मंत्री कवि हेमन्त कुमार, पूर्व जिलाध्यक्ष विरेन्द्र सिंह, संरक्षक राजीव कुमार चुन्ना, जिला अध्यक्ष डॉ. अशोक कुमार सिंह, मुस्लिम प्रकोष्ठ अध्यक्ष हाजी डॉ. आले हसन आजाद, प्रखंड संयोजक राजेश कुमार सिंह राजू ने केन्द्र द्वारा समाज में एकरूपता कायम करने के प्रयास को सराहनीय बताया। समारोह के दौरान एक पेंटिंग प्रदर्शनी का भी आयोजन किया गया। भीखमचंद नखत ने बाढ़ नगर के आठ शिक्षण संस्थाओं में जीवन विज्ञान के कार्यों का अवलोकन किया तथा अनेक छात्र-छात्राओं को पदक और प्रमाण पत्र देकर सम्मानित किया। संयोजन साधुशरण सिंह सुमन ने किया।

अणुव्रत गीत बच्चों के जीवन निर्माण में सहायक

नई दिल्ली, 4 अगस्त। अखिल भारतीय अणुव्रत न्यास द्वारा दशम् अणुव्रत नैतिक गीत गायन प्रतियोगिता उत्तर-पश्चिम दिल्ली की जिला स्तरीय कार्यक्रम साध्वी यशोधरा के सान्निध्य में खिलौनी देवी धर्मशाला पीतमपुरा में आयोजित हुई। प्रतियोगिता में 12 विद्यालयों के प्रतियोगियों ने भाग लिया। साध्वी यशोधरा ने कहा आचार्य तुलसी एवं आचार्य महाप्रज्ञ के इन गीतों का यदि एक वाक्य भी बच्चे अपने जीवन में उतार लें तो उनके जीवन में बड़ा क्रांतिकारी परिवर्तन हो सकता है।

अणुव्रत न्यास के प्रबंध न्यासी के.एल. जैन ने कहा कि यदि अणुव्रत गीतों की एक लाइन भी बच्चों के जीवन में आ जाए तो वह समाज और राष्ट्र के लिए एक धरोहर सिद्ध होगी।

इस अवसर पर प्रो. रतन जैन, आचार्य शिवमुनि महाराज की शिष्या साध्वी सुमनश्री, विजय वर्धन डागा, विमल गुनेचा, बाबूलाल दूगड़, प्रकाश भंसाली, धनराज बोथरा, शांतिकुमार जैन, जालपतराय जैन, स्वरूपचंद बरड़िया, अभय सिंघी, प्रदीप संचेती, नरपत मालू उपस्थित थे। उत्तर पश्चिमी दिल्ली के 12 विद्यालयों के 260 विद्यार्थियों ने भाग लिया, इनके साथ विद्यालयों के शिक्षक भी उपस्थित थे।

वैभव प्रदर्शन से बढ़ती है हिंसा

लाडनूं, 10 अगस्त। धन अनेक लोगों के पास होता है। किन्तु प्रायः वे यह नहीं जानते कि धन का उपयोग कैसे करें। असीमित उपयोग और वैभव का प्रदर्शन हिंसा को बढ़ावा देते हैं। जो केवल स्वयं का पोषण करते हैं, सामाजिक दायित्व को नहीं निभाते, वे अनेक सामाजिक विषमताओं के साथ-साथ हिंसा को बढ़ावा देते है। समाज व्यवस्था अच्छी होगी तभी धर्म और नैतिकता की बात भी अच्छी लगेगी। उक्त विचार अणुव्रत अनुशास्ता आचार्य महाप्रज्ञ ने जैन विश्व भारती लाडनूं के सुधर्मा सभा में महाप्रज्ञ सेवा प्रकरण द्वारा आयोजित विशाल विकलांग सहायता शिविर के शुभारम्भ समारोह को सम्बोधित करते हुए व्यक्त किए।

गुलाब कौशल्या चेरिटेबल ट्रस्ट जयपुर के सौजन्य एवं भगवान महावीर विकलांग सहायता समिति के तकनीकी सहयोग से लाडनूं में आयोजित शिविर के सम्बध में आचार्यश्री ने कहा गति के बिना आदमी शून्य हो जाता है। पैर आदमी की जड़ें है। जड़ों को मजबूत करने से व्यक्ति समाज का सक्रिय सदस्य बन जाता है। इस दृष्टि से भगवान महावीर विकलांग सहायता समिति डी.आर. मेहता के नेतृत्व में बहुत बड़ा कार्य कर रहीं हैं। उनके साथ मिलकर गुलाब कौशल्या चेरिटेबल ट्रस्ट के प्रमुख श्री नरेश मेहता समाज कल्याण के महात्वपूर्ण कार्य कर रहे है। हर आदमी यदि समाज में बढती हिंसा और कष्टों को कम करने में यदि अपने धन का उपयोग करे तो समरसता का वातावरण बनता है।

युवाचार्य महाश्रमण ने अपने संम्बोधन में बताया कि गरीबी एक अभिशाप है, ऊपर से विकलांगता और नशा जीवन को भ्रष्टभूत बना देती है। बहुत कम लोग होते है। जिनके मन में दूसरों का दुःख दूर करने की भावना होती है। नरेश मेहता नेत्र चिकित्सक, विकलांग सहायता आदि के महत्त्वपूर्ण कार्यों से अपने सामाजिक दायित्व का निर्वाह कर रहें है।

युवाचार्यश्री ने इस अवसर पर उपस्थित लगभग 50 विकलांग लोगों की शराब, बीड़ी, सिगरेट आदि नशीली वस्तुएं छोड़ने क प्रेरणा दी। अधिकांश ने जीवन भर नशा नहीं करने के संकल्प ग्रहण किए।

इससे पूर्व लेखन-पत्रकार श्री महेन्द्र जैन ने सेवार्थी संस्थाओं तथा शिविर का परिचय दिया। विकलांग सहायता समिति के अधिशाशी अधिकारी मदन मोहन शर्मा ने कृत्रिम पैर व समिति की विश्वव्यापी गतिविधियों की जानकारी दी। महाप्रज्ञ सेवा प्रकल्प के उध्यक्ष नरेश मेहता ने प्रकल्प की योजनाओं के बारे में बताया कि 5000 नेत्र लेंस प्रत्यारोपण का लक्ष्य पूरा करने के साथ-साथ लाडनूं क्षेत्र के प्रत्येक विकलांग भाई-बहन को कृत्रिम पैर, केटलियर तिपहिया साइकिल आदि देकर क्षेत्र को इस अभिशाप से मुक्त करने का प्रयास किया जायेगा। उन्होंने बताया कि स्थानीय शिविर युवक परिषद् के सहयोग से सफलता की और बढ़ रहा है। अनेक विकलांग लोग रजिस्ट्रेशन करवा रहें है।

एक दिवसीय प्रेक्षाध्यान शिविर

भीलवाड़ा। साध्वी भीखांजी के सान्निध्य में स्थानीय महिला मंडल के तत्वावधान में महिलाओं हेतु एक दिवसीय प्रेक्षाध्यान शिविर का आयोजन हुआ। इसमें लगभग 100 बहनों ने भाग लिया। साध्वीश्री ने शिविरार्थियों को संबोधित करते हुए कहा प्रेक्षाध्यान के द्वारा तनावमुक्त जीवन जीया जा सकता है। प्रेक्षाध्यान के द्वारा हमारा चित्त भी निर्मल बनता है।

साध्वी प्रमिलाकुमारी ने कहा ध्यान आत्मजगत् तक पहुंचने का सशक्त माध्यम ही ध्यान में स्थित होने के लिए सबसे पहले संकल्प करना चाहिए कि मैं चित्त शुद्धि के लिए कर रही हूं। इसके लिए आंतरिक और बाह्य दोनों प्रकार की शुद्धि होनी चाहिए। आंतरिक शुद्धि के लिए आसक्ति का अल्पीकरण, कषायों का उपशमन इन्द्रिय व मन का निग्रह और व्रत की चेतना का जागरण जरूरी है।

साध्वी पुष्पप्रभा ने तनाव प्रबंधन पर अपने विचार व्यक्त किये। साध्वी आस्थाश्री ने शिविरार्थियों को मैत्री की अनुप्रेक्षा करवाई। कार्यक्रम का प्रारंभ महिला मंडल के आत्मसाक्षात्कार गीत से हुआ। इस अवसर पर जेठमल चौधरी एक्युप्रेशर विशेषज्ञ ने आज की तथाकथित बीमारी के कारण व एक्युप्रेशर से कैसे निवारण कर सके इस विषय पर अपने विचार रखे। कार्यक्रम का संचालन महिला मंडल की मंत्री अंजना रांका ने किया।

पाठकों के स्वर

- आप द्वारा प्रेषित प्रतिष्ठित पत्रिका 'अणुव्रत''निरंतर प्राप्त हो रही है। इसी क्रम में 'अणुव्रत' पाक्षिक 1-15 जून 2009 अंक 16 पढ़ा।
  यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि 'अणुव्रत' पाक्षिक पत्रिका समाज में नवचेतना, नव जागृति तथा चरित्र को शुद्ध बनाने की प्रेरणा प्रदान करती है तथा सामाजिक प्रदूषण को सुधारने के लिए मार्ग-दर्शन देती है। इस प्रकार से 'अणुव्रत' अपने नाम को सार्थक करती हुई पत्रिका उत्तरोत्तर गतिशील है। आपके संपादन में पत्रिका दिनोंदिन प्रगति की सीढ़ियां चढ़े। सुंदर संपादन हेतु मेरी हार्दिक कामनाएं स्वीकारें।
  ओमप्रकाश 'दार्शनिक'
  इलाहाबाद

- 'अणुव्रत' पाक्षिक 1-15 जुलाई 2009 का अंक प्राप्त हुआ। अणुव्रत एक उच्च कोटि की ऐसी पत्रिका है जो मनुष्य के हृदय में झांककर उसे व्यक्तित्व के निखार के लिए उचित मार्ग-दर्शन करती है। उसे एक अच्छा इन्सान बनाने में सहायक होती है। इसके सभी आलेख उच्च कोटि के होते हैं। मैं इस पत्रिका की आभारी हूं, जिसके माध्यम से आचार्य महाप्रज्ञ के पवित्र विचारों को जानने का अवसर मिलता है।
  लक्ष्मी रानी लाल
  जमशेदपुर